भारतीय सहकारिता
का
इतिहास

[सन् १९०० से १९४७ तक]

विद्यासागर शर्मा

१९५४

हिन्दी प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद

प्रकाशक
बृहस्पति उपाध्याय
हिन्दी प्रकाशन मंदिर
इलाहाबाद

पहली बार : : १९५४
मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

प्रकाशकीय

इस पुस्तक में भारतीय सहकारिता का सन् १९०० से लेकर १९४७ तक का क्रमबद्ध इतिहास दिया है। इस पुस्तक को पढ़कर ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल से प्रचलित सहकारिता के आंदोलन को परतंत्र भारत में क्या रूप दिया गया और अब स्वतंत्र भारत में उसके रूप को किस प्रकार पल्लवित किया जा रहा है। इसमें संदेह नहीं कि भारत के स्वतंत्र होने के बाद स्थिति बदल गई है और पराधीन भारत में जिन भारतीय परम्पराओं को तोड़-मोड़ कर, विकृत करके, विदेशी शासन ने अपने अनुकूल बनाया था, अब उन्हें नया रूप देना होगा।

हमें विश्वास है कि सहकारिता की परम्परा को मूल रूप में समझ कर उसका परिष्कार करने तथा वर्तमान परिस्थिति में राष्ट्र के लिए अधिकाधिक उपयोगी बनाने में यह पुस्तक विशेष रूप से सहायक होगी।

सहकारिता के उदय और विकास की क्रमबद्ध जानकारी के लिए लेखक की अन्य रचना 'सहकारिता का उदय और विकास' भी पाठकों के लिए बड़ी उपयोगी है। इन दोनों पुस्तकों के अध्ययन से सहकारिता के देश-विदेश में विकास का विस्तृत ज्ञान पाठकों को हो जायगा।

निश्चय ही इन दोनों पुस्तकों से सहकारिता-विषयक साहित्य के भंडार में अमूल्य वृद्धि हुई है। आशा है, पाठक इनके अध्ययन से लाभ उठावेंगे।

भूमिका

जब मैंने सहकारिता पर लिखने की योजना बनाई तो विचार यह था कि सहकारिता का संक्षिप्त इतिहास तथा सहकारी सिद्धांत एक ही पुस्तक में दे दिये जायं, किन्तु पाठकों की सुविधा तथा प्रकाशन-संबंधी व्यवस्था को ध्यान में रखकर अंततः यही निश्चय हुआ कि सहकारिता के सिद्धांतों पर एक अलग पुस्तक में ही चर्चा की जाय ।

प्रस्तुत पुस्तक के पूर्वार्द्ध में आपको १९०० से १९४७ तक का भारतीय सहकारिता-आन्दोलन का इतिहास मिलेगा । इस काल में देश पराधीन था। अंग्रेजी शासन ने सहकारिता की हमारी प्राचीन परम्परा को पनपने नहीं दिया; परन्तु अनेक कारणों से विवश होकर जब विदेशी शासकों को सहकारिता का ढांचा खड़ा करना ही पड़ा तो उन्होंने इस आन्दोलन का वह स्वरूप प्रचलित किया, जिसका ढांचा देश की पुरातन परम्परा के आधार पर खड़ा नहीं किया गया था और जिसकी मान्यताएं नौकरशाही पद्धति की इतनी अनुगामिनी थीं कि सहकारिता आन्दोलन द्वारा होने वाला लाभ देश को उतना न मिला, जितना अपेक्षित था । इस युग में सहकारिता के आन्दोलन में भी परतंत्रता की झलक मिलती है ।

इतना होते हुए भी हम यह मानने से इन्कार नहीं कर सकते कि विपरीत या अपरिमार्जित रूप में भी सहकारिता ने देश के जन-मानस में नये ढंग से सोचने की चेतना जागृत कर दी और जब देश स्वतन्त्र हुआ तो उसको सहकारिता की यह धरोहर मिली। फलतः उससे प्रेरणा पाकर नये युग का निर्माण-कार्य शुरू हुआ । सहकारिता के गुण-दोषों पर विवेचन किया गया और तदनुसार इस आन्दोलन के ग्राह्य स्वरूप को अधिक व्यापक रूप से प्रचारित करने की योजनाएं बनीं। प्रयत्न हो

रहा है कि इस आन्दोलन को भारतीय भूमि तथा जलवायु के अनुकूल बनाया जाय। इसमें अभी तक कितनी सफलता मिली है, यह देखना होगा। परन्तु स्वतन्त्रता के इन ६ वर्षों में सहकारिता-आन्दोलन की गति को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी मौलिक संघटना में क्रांतिकारी परिवर्तन होने जा रहे हैं। इसका महत्व बढ़ रहा है और अपेक्षा की जाती है कि पूंजीवाद तथा साम्यवाद के मध्य-मार्ग साम्ययोग की कल्पना इसी आन्दोलन द्वारा चरितार्थ होगी। आशा है, पाठक इस इतिहास का इसी दृष्टिकोण से अध्ययन करेंगे।

शिमला **—विद्यासागर शर्मा**

३१.१०.५४

विषय-सूची

भारतीय सहकारिता
का
इतिहास

: १ :

भारत में सहकारिता

(१९०० से १९४७ तक)

सहकारिता का प्रारंभ

जिस समय भारत में आधुनिक सहकारिता का प्रारंभ हुआ, उस समय आधुनिक पाकिस्तान, बरमा तथा लंका इस महादेश के अंग थे। सारा महादेश अंग्रेजों की सत्ता के अधीन आ चुका था। देश में नव-चेतना आ रही थी और वह परतंत्रता के बन्धनों से मुक्त होने को उतावला हो रहा था। पंचायत-राज की प्रथा के तहस-नहस हो जाने से हर कार्य का उत्तरदायित्व केंद्रीय सरकार पर पड़ रहा था। जनता से अपनी सहायता स्वयं करने के साधन छीने जाचुके थे और उसका हर संगठन संदेह की दृष्टि से देखा जाता था। सन् १८५७ के विद्रोह की आग दबी जरूर थी; परन्तु भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी। वरनेक्युलर प्रेस रेग्यूलेशन (Vernacular Press Regulation) के विरुद्ध जनता का रोष बराबर मौजूद था। इन सब परिस्थितियों पर कुछ काबू पाने तथा जनता की बात सरकार तक पहुँचाने के लिए श्री ह्यूम की अध्यक्षता में इंडियन नेशनल कांग्रेस की नीव १८८५ में रखी जा चुकी थी। विदेशी शासक इस समय ऐसी परिस्थिति में थे कि वे अपने राज्य की जड़ें पक्की करने के लिए एक ओर तो जन-नायकों को तथा देशी संगठनों को दृढ़ तथा बलशाली नहीं होने देना चाहते थे और दूसरी ओर वे बढ़ते हुए असंतोष के स्वाभाविक परिणाम से बचने के लिए जनता पर आर्थिक संकट की जिम्मेदारी डालना चाहते थे। उस समय भारत की जनसंख्या ३० करोड़ थी, जिसमें अधिकांश जनता का निर्वाह कृषि पर था और भारतीय कृषि वर्षा पर निर्भर करती थी। पंचायतों की प्रथा नष्ट होने से साहूकार अथवा बनिया वर्ग जनता के नियंत्रण से मुक्त होकर

उच्छृंखल हो रहा था। मनमाना व्याज लेकर गरीब किसान का पूरी तरह से शोषण किया जा रहा था। ग्राम-ग्राम में अन्न-भंडार खाली हो रहे थे, क्योंकि उनके संभालने वाली संस्था पंचायत समाप्त हो चुकी थी। एक दूसरे की सहायता की प्रथा मृतप्राय हो जाने के कारण उपज घट रही थी। जनता के असंगठित हो जाने के कारण मालिक और काश्तकार के संबंधों में विषमता आ गई थी। काश्तकार विवश हो रहा था। यही कारण था कि भारत में अकाल के बाद अकाल आये। विदेशी राज्य के सामने यह प्रश्न एक चुनौती के रूप में आ उपस्थित हुआ। अकाल द्वारा लाखों मनुष्य भूख की पीड़ा से काल का ग्रास बन जाते, सैंकड़ों ग्राम उजड़ जाते और हजारों एकड़ भूमि काश्त-हीन रह जाती। इस आपत्ति की जिम्मेदार विदेशी सरकार मानी जाती थी क्योंकि विकेंद्रीकृत ग्राम-पंचायतें तथा मालिया (Land Revenue) के उपलक्ष में जमा हुए अन्न भंडार, जो अकाल में जनता का अवलम्ब होते थे, इसी राज्य-तंत्र ने उससे छीने थे।

प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि मनुष्य जब कोई कार्य यह सोचकर करता है कि दूसरे को हानि पहुंचा कर वह स्वयं लाभ उठाए तो निश्चय ही वह कार्य उसके लिए भी हानिकारक सिद्ध होता है। भारत में अनेकों आक्रमण हुए। अनेकों विदेशियों ने यहां आकर शासन किया; परन्तु उन्होंने ग्राम-राज्य को नहीं छेड़ा। यही कारण था कि ग्रामीणों के विद्रोह से वे बचे रहे। लेकिन अंग्रेजों ने भारत के इस सुदृढ़ दुर्ग को तोड़ कर अपने ऊपर जनता के दोष का संकट मोल ले लिया। प्रतिबंध न रहने के कारण महाजनों ने ऋण पर ब्याज की दर इतनी बढ़ा दी कि किसान पीढ़ी-दर-पीढ़ी का कर्जदार बन गया। उसकी सारी उपज ब्याज में जाने लगी और फल-स्वरूप १८७८ में बंबई के किसानों ने विद्रोह कर दिया। उधर भू-स्वामियों ने किसानों से अन्धाधुन्ध लगान वसूली प्रारंभ कर दी। तिसपर सरकार भी ऐसे कानून बनाती चली गई, जिनसे विभिन्न वर्गों में निरंतर वैमनस्य बढ़ता गया।

ये सारी समस्याएं अंग्रेजी शासनाधीन भारत तथा देशी राज्यों में

एक-समान थीं । भावनगर के छोटे से राज्य में किसानों का ऋण ८३,३८,-८७४) रु० था। राज्य ने इसको घटाकर २०,५१,४७३) रु० किया और महाजनों से कहा कि इस रकम को वे चुकता तौर पर ले लें, अन्यथा कड़े कानून बना दिये जायंगे । आखिर वे राजी हो गए और राज्य ने यह रकम देकर किसानों को ऋण-मुक्त कर दिया। बाद में यह रकम राज्य सरकार ने बिना ब्याज के आसान किस्तों में वापस ले ली । ऐसा प्रयोग शेष भारत में भी हो सकता था। परन्तु अंग्रेजी शासकों की योजना कुछ और थी। उन्होंने बंबई में ऋण-जांच-समिति नियुक्त की और केंद्रीय सरकार ने अकाल (Famine) कमीशन स्थापित किया । इन दोनों की रिपोर्टों में यह सिफारिश की गई कि किसानों को अकाल की विपत्ति से बचाने के लिए ऋण-मुक्त किया जाना अनिवार्य है। इसके लिए जहां यह सुझाव दिया गया कि ब्याज की दरों तथा ब्याज से बढ़ने वाली मात्रा को कानून द्वारा नियंत्रित किया जाय, वहां यह सुझाव भी दिया कि किसानों को सहकारी ढंग पर संगठित किया जाय, ताकि वे स्वावलम्बी होकर महाजनों के ऋण तथा ब्याज के अत्याचारों से बच सकें। अकाल-कमीशन ने तो अपनी रिपोर्ट में यह भी कहा कि किसानों की पारस्परिक साख समितियां बनाई जायं, क्योंकि अकाल से मुकाबला करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए ऋण-मुक्ति एक आवश्यक उपाय है। उधर मैसूर राज्य ने इस दिशा में कदम उठाकर सन १८९४ तक ६४ कृषि-बैंक बना लिये थे । संयुक्त-प्रांत (उत्तर-प्रदेश) में ग्राम्य-बैंक कम्पनी-कानून के अधीन चालू किये गए। वैडरबर्न और न्यायमूर्त्ति रानडे ने भी एक योजना बनाई। तकावी ऋणों का क्रम जारी हुआ । उधर डूपरने (Dupernex) ने उत्तर भारत के लिए पीपुल्स बैंकों की योजना बनाई। परंतु जितनी योजनाएं थीं, इनसे न तो उस सहकारिता का भारत में प्रवेश हो पाया, जो उस काल के यूरोप में पनप रही थी और न ही इनके द्वारा कोई ऐसी कार्यवाही शुरू हुई, जिससे भारत का पुरातन सहकारी जीवन फिर से जीवित हो पाता ।

आखिर १८९२ में मद्रास सरकार ने सर फ्रेड्रिक निकल्सन (Sir Fredric Nicholson) को सहकारिता की पद्धत्ति के अध्ययन के लिए यूरोप भेजा। उन्होंने यूरोप की सहकारिता का अध्ययन किया; परन्तु इनके सामने भारत की समस्याओं का एकांगी चित्र था। वह केवल इसी एक समस्या को लेकर चले थे कि भारतीय किसान के लिए ऋण किस प्रकार जुटाया जाय? यूरोप में उन्होने राशडेल्स पायोनियर को देखा था। पनपती हुई डेनमार्क की सहकारिता उनके समक्ष थी। तदनुसार उन्होंने यहाँ भी जर्मनी के रैफिसिन प्रकार के असीमित दायित्व वाले बैंक आयोजित करने चाहे। निकल्सन महोदय अकाल कमीशन के भी सदस्य रहे। परन्तु जिस विदेशी राज्य की नींव "फूट डालो और राज्य करो" के कुत्सित सिद्धांत पर खड़ी थी, जिसने अपनी सत्ता जमाने के लिए प्राचीन ग्रामीण एकता तथा सुव्यवस्था को छिन्न-भिन्न किया था, वह ऐसी सहकारिता क्यों प्रदान करती, जो ग्रामीणों की सर्वतोमुखी उन्नति का कारण बन जाती।

१९०४ का सहकारी अधिनियम

श्री फ्रेड्रिक निकल्सन की रिपोर्ट तथा उनके "रेफिसिन सुझाव" की घोषणा के फलस्वरूप और अकाल-कमीशन की सिफारिशों के अनुसार एक कमेटी का निर्माण हुआ जिसके प्रधान सर एडवर्ड लॉ थे। इस कमेटी को इन सिफारिशों को क्रियान्वित करने का काम सौंपा गया। यह कमेटी जून तथा जुलाई १९०१ में शिमला मे बैठी और इसने पहले सहकारी विधान का एक विधेयक तैयार किया। काफी विचार-विमर्श के बाद २५ मार्च सन् १९०४ को पहला सहकारी अधिनियम बना। शुरू-शुरू में अकाल कमीशन की सिफारिश पर ही यह अधिनियम बनाया जा रहा था; परन्तु जब लॉ कमेटी के बनाये हुए विधेयक ने अधिनियम का रूप धारण कर लिया तो भारतीय सहकारिता का स्वरूप पजौर की सर्वप्रथम सहकारी सभा के उदार उद्देश्यों के प्रतिकूल संकीर्ण और संकुचित होकर रह गया।

इस अधिनियम के विशेष प्रावधान ये थे:—

१. एक ही ग्राम, नगर, वर्ग अथवा वर्ग के दस व्यक्ति बचत तथा अपनी सहायता के लिए सहकारी सभा का निर्माण कर सकते हैं।

२. सभा के प्रधान उद्देश्य थे सदस्यों, असदस्यों से अथवा सरकार व सहकारी सभाओं से अमानतें प्राप्त करके धन-राशि एकत्रित करना और उसे सदस्यों में ऋण के रूप में वितरित करना तथा रजिस्ट्रार महोदय की आज्ञा से अन्य सहकारी-सभाओं को ऋण देना।

३. सहकारी साख समितियों का नियंत्रण तथा संगठन हर प्रांत में एक विशेष सरकारी अधिकारी के अधीन रखा गया, जिसका नाम रजिस्ट्रार सहकारी-साख-सभा रखा गया।

४. उक्त रजिस्ट्रार को हर सभा के हिसाब की बिना शुल्क के जांच-पड़ताल करना आवश्यक था।

५. ग्राम्य-सभाओं के ४/५ कृषक और नागरिक सभाओं के ४/५ गैर-कृषक सदस्य होने आवश्यक थे।

६. ग्राम्य-सभाओं का उत्तरदायित्व असीमित होना आवश्यक था और सीमित उत्तरदायित्व राज्य सरकार की अनुमति से हो सकता था। नागरिक सभाओं का उत्तरदायित्व सीमित तथा असीमित दोनों में से कोई भी हो सकता था।

७. ग्राम्य-सभा के लाभ में से लाभांश के वितरण की अनुमति नहीं थी। हर वर्ष के अन्त में लाभांश सुरक्षित कोष (Reserve Fund) में जमाकर लिया जाता। यह प्रावधान अवश्य था कि जब सुरक्षित कोष उपनियमों में वर्णित नियत सीमा से बढ़ जाता तो सदस्यों को बोनस (Bonus) के रूप में दिया जा सकता था।

८. नागरिक सभाओं में उस समय तक कोई लाभांश वितरित नहीं किया जा सकता था जबतक कि लाभ का चौथा भाग सुरक्षित कोष में जमा नहीं कर दिया जाता था।

९. ऋण केवल सदस्यों को ही दिया जा सकता था और आमतौर

पर व्यक्तिगत अथवा वास्तविक जमानत पर दिया जाता था । साधारण चल-संपत्ति की जमानत स्वीकार नहीं की जाती थी। यद्यपि सोने के गहने, जो कृपक की बचत का एक साधारण साधन हैं, स्वीकार कर लिये जाते थे।

१०. सभा की हिस्सा-पूंजी में किसी भी सदस्य के हिस्मे निमंत्रित किये जा सकते थे।

११. कानून के अधीन बनाई गई सभाओं को स्टाम्प तथा रजिस्ट्री के अधिनियम के अधीन फीस नहीं देनी पड़ती थी ।

१२. किसी भी व्यक्तिगत ऋण के लिए सभा के हिस्सों को कुर्क नहीं कराया जा सकता ।

इस एक्ट के लागू होते ही सब प्रांतों में रजिस्ट्रारों की नियुक्ति हो गई और ग्राम-ग्राम में जो रही-सही एकता की भावना थी वह और भी निर्बल पड़ने लगी । एक-एक ग्राम में ब्राह्मणों, राजपूतों, चमारों तथा भंगियों की पृथक्-पृथक् सहकारी सभाएं बनने लगी। ज्यों ही १० व्यक्ति इकट्ठे हो जाते, सहकारी सभा बना दी जाती । सहकारी विभाग के कर्मचारी सभाओं की संख्याओं पर जोर देते, बनी हुई सभाओं की सदस्यता के बढ़ाने पर कोई जोर नहीं दिया जाता था। सन् १९०६-७ में सहकारी-सभाओं की संख्या ८४०, सदस्यता संख्या ९०८०० और चालू धन २३ लाख रु० हो गया था। धीरे-धीरे आन्दोलन आगे बढ़ा और १९०९-१० में आन्दोलन की प्रगति का ताप निम्न आंकड़ों से चलता है:—

केंद्रीय सभाएं—१७

प्राथमिक सभाएं—१९०९.

सदस्यता (कृषक)—१०७,६४३

सदस्यता (अन्य)—५४, २६७

चालू धन—६८,१२,००० रुपये

इन आंकड़ों से ही पहले विधान के दोषों का पता चलजाता है। उक्त अधिनियम में केंद्रीय सभाएं अथवा बैंकिंग यूनियन बनाने का कोई विधान

नहीं था। परन्तु इनकी आवश्यकता इतनी अधिक थी कि प्रावधान न होने पर भी केंद्रीय सभाएं बन गईं और इनकी कम्पनी अधिनियम के अधीन रजिस्ट्री कराई गई। साथ ही यह भी अनुभव किया गया कि कृषि तथा उद्योग-धंधों की उन्नति तथा उनको बिक्री संबंधी सुविधाएं प्राप्त कराने के लिए सहकारिता का प्रयोग हो सकता है।

परन्तु सन् १९०४ के अधिनियम के अधीन ऋण तथा साख-सभाओं के अतिरिक्त किसी और किस्म की सभाओं की रजिस्ट्री कराने का कोई प्रावधान न था। उपभोक्ता (Consumer) क्षेत्र में सहकारिता का प्रवेश रुका रहा। इस काल में रजिस्ट्रारों के कई सम्मेलन हुए। उन्होंने भी इन दोषों को देखकर प्रांतीय सरकारों का ध्यान आकर्षित किया। फलस्वरूप भारत सरकार ने एक नया अधिनियम बनाने की आवश्यकता अनुभव की।

सन् १९१२ का सहकारी-अधिनियम

सन् १९१२ में नया सहकारी कानून बना। यह नया कानून उस समय से लेकर अब तक संशोधित नहीं हुआ। हां, बंबई, मद्रास तथा बंगाल की प्रांतीय सरकारों ने सहकारिता विषय के प्रांतीय सूची में आने पर इसमें कुछ परिवर्तन अवश्य किये; परन्तु बहुत से राज्यों में अभी तक यह एक्ट पुराने रूप में ही चालू है, हालांकि १९४६ की सरैय्या-समिति ने इसमें संशोधन की सिफारिशें की थीं। अतः आवश्यक है कि इस अधिनियम के प्रावधानों पर कुछ अधिक व्यौरे से विचार कर लिया जाय।

सन् १९१२ के सहकारी-अधिनियम के विशेष परिचायक प्रावधान इस प्रकार हैं:—

१. केवल ऋण तथा साख-संबंधी सहकारी सभाओं के रजिस्ट्री किये जाने के १९०४ के प्रावधान के स्थान पर यह प्रावधान रखा गया कि वह सब सहकारी सभाएं रजिस्ट्री की जा सकेंगी, जिनका उद्देश्य सहकारिता के सिद्धांतों पर अपने सदस्यों के आर्थिक हितों का विकास हो

अथवा जिनका ध्येय ऐसी सभाओं के सुचारु रूप से संचालन में सहायता देना हो।

२. जबतक स्थानीय शासन अन्यथा निर्देश न दे, केंद्रीय सभाओं का दायित्व सीमित होगा और ग्राम्य ऋण व साख संबधी सभाओं का दायित्व असीमित होगा।

३. वार्षिक लेखा परीक्षण (audit) की आवश्यकता तथा उसका शासन पर भार पूर्ववत् रखा गया।

४. हर रजिस्टर्ड सभा रजिस्ट्रार की स्वीकृति से तथा वार्षिक शुद्ध लाभ का चौथा भाग सुरक्षित कोष में डाल कर शेष में से १० प्रतिशत तक जन-हित कार्यों के लिए कोष में डालने की अनुमति दी गई।

५. प्रांतीय सरकारों को अधिनियम के अधीन नियमादि बनाने की पर्याप्त छूट दी गई। जिनके अधीन सभाओं के कार्यक्रम, सदस्य बनने के लिए शर्तें, अधिवेशनों के लिए उपनियम, मध्यस्थता के कार्यक्रम आदि अधिकार दिये गए।

६. "सहकारी" (Co-operative) शब्द का प्रयोग रजिस्ट्री हुई सभाओं के अतिरिक्त किसी और सभा के साथ प्रयुक्त नहीं हो सकता।

७. सहकारी सभाओं के हिस्से कुर्क नही हो सकते।

८. सभा के अपने ऋणों की प्राप्ति के मामले में प्राथमिकता प्रदान की गई।

इस अधिनियम का संक्षिप्त विवरण आगे की पंक्तियों में दिया गया है—

१९०४ के अधिनियम की भूमिका (Preamble) की अपेक्षा इस अधिनियम की भूमिका में कुछ सुधार किया गया है; और मुख्यतः यह सुधार अल्प तथा सीमित आयवालों के उत्थान के लिए ही किया है। उन व्यक्तियों के लिए, जिनकी आय अधिक हो; परन्तु सह-कारिता के सिद्धांतों में जिनका पूर्ण विश्वास हो और वे इसका अनुकरण करके अपनी आय सीमित करने को तैयार हों, इस आन्दोलन की सहायता

प्राप्त करने की सुविधा नहीं है। परन्तु संसार में प्राय: ऐसे व्यक्ति पैदा होते रहते हैं और ऐसे ही व्यक्ति नेता बनते हैं जो इन प्रतिबंधों के होते हुए सहकारी पद्धति को आगे ले जायं, जैसे सहकारी जगत में श्री सरैय्या और देश तथा विदेश के ऐसे ही अन्य महानुभाव। इस एक्ट से पूर्व विशेष सहकारी विभाग कायम नहीं किया गया था; परन्तु इस अधिनियम के अधीन सहकारी-सभाओं की देख-भाल तथा लेखा-परीक्षण के लिए एक रजिस्ट्रार की नियुक्ति हो सकती है। अत: प्रकट है कि रजिस्ट्रार का कार्य केवल सभाओं की रजिस्ट्री करना ही नहीं है। इस एक्ट ने रजिस्ट्रार को सहकारी-सभाओं का ब्रह्मा, विष्णु, महेश बना दिया है और कुछ प्रांतों ने तो रजिस्ट्रार को और भी अधिकार देने का प्रयास किया। परन्तु इस प्रगति के विरुद्ध कइयों का आक्षेप यह है कि ऐसा कार्य आन्दोलन को लोकतंत्रात्मक बनाने में बाधक है। रजिस्ट्रार तथा उसके विभाग को आन्दोलन का मित्र, पथ-प्रदर्शक तथा उपदेष्टा होना चाहिए। रजिस्ट्रार के अधीन और बहुत से कर्मचारी होते हैं जिनका कर्त्तव्य संगठन, मंत्रणा, निरीक्षण तथा लेखा-परीक्षण स्तरानुसार होता है (धारा—३)। रजिस्ट्रार को सभाओं के पारस्परिक तथा सदस्यों के झगड़ों में मध्यस्थता के भी अधिकार होते हैं।

इस अधिनियम के अनुसार किन्हीं भी दस व्यक्तियों की सभा, जो सदस्यों की आर्थिक उन्नत्ति के लिए बनाई गई हो, रजिस्टर की जा सकती है। परन्तु इसलिए कि बड़े-बड़े पूंजीपति व्यवसायी इस अधिनियम की आड़ लेकर अल्प आयवालों से अनुचित लाभ न उठा लें, यह प्रावधान रखा गया है कि सदस्य किसान, कारीगर तथा छोटी हैसियत के आदमी हों (धा. ४)। सभाओं का दायित्व सीमित भी हो सकता है और असीमित भी। यदि सभा ऋण-संबंधी काम करती हो और उसके सब सदस्य व्यक्तिगत रूप से तथा प्रधानतया किसान हों तो उनका दायित्व असीमित अथवा अपरिमित होगा। असीमित दायित्व का अर्थ यह है कि वह अपने ही ऋण चुकाने का जिम्मेदार नहीं होगा वरन् वह सभा के समस्त ऋण के लिए उत्तरदायी

होगा। जहां सभा के सदस्य अधिकतर किसान न हों तो दायित्व सीमित या परिमित होता है। यदि हिस्से का पूर्ण अंकित मूल्य दिया जा चुका हो तो ऐसे सदस्य पर और कोई उत्तरदायित्व नहीं रह जाता।

इस आशंका को दूर करने के लिए कि कहीं सहकारी सभाओं पर किसी एक व्यक्ति का आधिपत्य न हो जाय, यह नियम बना दिया गया है कि कोई व्यक्ति कुल हिस्सा पूंजी के २०% अथवा १०००) रु० के मूल्य से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकता। परन्तु इस रकम का निश्चय सभा अपने उपनियमों में भी कर सकती है। यह पाबन्दी व्यक्तियों पर है, सभाओं पर नहीं (धारा —५)।

जिन सभाओं के केवल व्यक्ति सदस्य हों वह निम्न शर्तें पूरी करने पर रजिस्टर की जा सकती हैं:—

(१) सभा के कम-से-कम १० सदस्य हों और उनकी आयु १८ वर्ष से कम न हो।

(२) सभा को यदि ऋण का कार्य करना हो तो उसके सदस्य एक ही ग्राम, समीपवर्ती ग्राम-समूह अथवा कस्बे के निवासी होने आवश्यक हैं। साधारणतया वह एक ही व्यवसाय व जाति के होने चाहिएं परन्तु इस प्रतिबंध को ढीला करने के अधिकार रजिस्ट्रार को दिये गए हैं।

(४) सभा का ध्येय अपने सदस्यों की आर्थिक दशा को सहकारिता द्वारा सुधार करने का होना चाहिए।

(५) प्रार्थना-पत्र पर सब सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिएं जिनकी संख्या १० से कम न हो।

(६) जिन सभाओं के व्यक्ति और सभाएं सदस्य हों, व्यक्तियों और सभाओं की दशा में, उनके वैध प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर भी होने चाहिएं। उपनियम भी प्रार्थना-पत्र के साथ आने चाहिएं (धारा —८)।

जब रजिस्ट्रार को यह विश्वास हो जाय कि सब कार्य नियमानुसार हुआ है तो वह सभा की रजिस्ट्री कर देता है और सभा कार्यारंभ कर सकती है (धारा—९ व १०)।

यदि किसी कारणवश रजिस्ट्रार सभा की रजिस्ट्री करने से इंकार करे तो उस निश्चय की अपील प्रांतीय सरकार के पास की जा सकती है (धारा—९) ।

सभा के सदस्यों से संबंध, सभा के प्रबंध तथा अन्य भीतरी मामलों के निर्धारण हेतु उपनियम बनाये जाते हैं। जो सभाएं सीमित दायित्व वाली होंगी उनके अन्त में शब्द "लिमिटेड" रहेगा और एक प्रांत में रजिस्ट्रार दो सभाओं का एक नाम नहीं होने देगा । सभा के सदस्य वही होंगे जिन्होंने रजिस्ट्री करवाने हेतु प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर किये हों या जो उपनियमों के अनुसार सदस्यों की श्रेणी में प्रविष्ट किये गए हों । सभाओं के आम-तौर पर हिस्से होते हैं; परन्तु कुछ प्रकार की सभाओं का केवल प्रवेश-शुल्क ही होता है ।

सहकारी सभाओं में हर सदस्य का एक ही मत होता है; भागों (हिस्सों) के मूल्यों के अनुपात पर नहीं होता । जब कोई सभा सदस्य होती है तो मताधिकार प्रयोग करने के लिए वह अपना प्रतिनिधि भेजती है। (धारा–१३)।

भूतपूर्व सदस्य, सदस्य न रहने के दो वर्ष पश्चात तक सहकारी ऋण सभा (असीमित) के ऋण का उत्तरदायी होता है परन्तु वह उस समय तक के ऋण के लिए जिम्मेदार होता है जब तक वह सदस्य रहा हो (धारा—२३)

मृत सदस्य की संपत्ति अथवा उसके उत्तराधिकारी एक वर्ष तक उक्त सदस्य के व्यक्तिगत ऋण के चुकाने के उत्तरदायी हैं । परन्तु असीमित दायित्व वाली सभाओं का बाहरी ऋण मृतसदस्य की संपत्ति व उसके उत्तराधिकारियों से उसी दशा में वसूल किया जा सकता है, जब साधारण रूप से अदालत से डिग्री प्राप्त की जाय । (धारा—२४) । सभाओं के भाग स्वतन्त्रतापूर्वक बेचे नहीं जा सकते । इस संबंध में कुछ प्रतिबंध तो एक्ट में हैं, कुछ सभाएं उपनियमों द्वारा लगाती हैं ।

सीमित दायित्व वाली सभाओं में तो यह नियम है कि कोई बाहरी मनुष्य उतने ही मूल्य में सभा की अनुमति से हिस्से खरीद सकता है, जितने में बेचने वाले सदस्य ने खरीद किये हों । और वह अधिकतम हिस्से रखने

की मात्रा से अधिक भाग नही खरीद सकता । जहा दायित्व असीमित हो वहां उनके सदस्य उस समय तक भाग-विक्रय नहीं कर सकते जबतक कि उसे भाग लिये हुए १ वर्ष न हो गया हो। फिर भी वह भाग उसे सभा-सदस्य को ही देना होगा, किसी बाहर के आदमी को नहीं। (धारा—१४)।

सहकारी समितियो को अपना आय-व्यय रजिस्ट्रार द्वारा निश्चित किये हुए ढंग पर रखना होता है। रजिस्ट्रार द्वारा मनोनीत आय-व्यय-परीक्षक (ऑडीटर) आय-व्यय की जांच करता है। (धारा १८)।

सहकारी समितियों को निम्नलिखित विशेष सुविधाएं प्राप्त हैः—

यदि सभा ने किसी वर्तमान सदस्य अथवा भतपूर्व सदस्य को बीज अथवा खाद उधार दिया है, अथवा बीज खाद मोल लेने के लिए रुपया उधार दिया है तो समिति को उस समय अथवा खाद और बीज के द्वारा उत्पन्न की हुई फसल से अपना रुपया वसूल करने का प्रथम अधिकार होगा। यदि वह सदस्य किसी और का भी कर्जदार है तो वह लेनदार उस फसल को, जो समिति के बीज या खाद से पैदा की गई है, कुर्क नहीं करवा सकता। इसी प्रकार यदि समिति ने सदस्यों को बैल, चारा, खेती-बाड़ी तथा उद्योग-धधों मे काम आनेवाले यंत्र, और उद्योग-धंधों के लिए कच्चा माल उधार दिया है, अथवा इन वस्तुओं को खरीदने के लिए रुपया उधार दिया है तो इन वस्तुओं पर, तथा इस कच्चे माल के द्वारा तैयार किये हुए पक्के माल पर, समिति का प्रथम अधिकार होगा। किन्तु कलकत्ता हाई-कोर्ट ने एक मुकदमे में यह निर्णय दे दिया कि जबतक सभा अदालत से डिग्री न करा ले तबतक वह दूसरे लेनदारों को डिग्री कराने से नहीं रोक सकती। इस संबंध में अधिनियम के संशोधन की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। सभाओं के यह अधिकार सरकारी मालगुजारी की वसूली, जमींदार के लगान तथा ऐसे लेनदार के अधिकार को नष्ट नहीं करता, जिसने वस्तु-विशेष पर सभा के अधिकार को न जानते हुए उसे खरीद लिया हो (धारा १९)।

कोई लेनदार अपने ऋण के लिए सभा में सदस्य के भाग को कुर्क

नहीं करा सकता । परन्तु सभा को यह अधिकार है कि सदस्य के जमा किये हुए रुपये तथा उसके लाभ के भाग को ऋण के बदले में ले ले। बाहर का लेनदार कुर्की द्वारा इस रुपये को नहीं ले सकता। (धारा २०—२१)।

असीमित दायित्व वाली सभा यदि चाहे तो मृत सदस्य के भाग उसके उत्तराधिकारी को दे दे अथवा उसका मूल्य चुका दे। परन्तु सीमित दायित्व वाली सभा के लिए यह आवश्यक है कि मृत सदस्य के उत्तराधिकारी को हिस्सा दे। (धारा २२)।

सहकारी सभा के लाभ पर आयकर और अधिभार (Income tax and Super tax) नहीं लिया जाता और न ही सदस्यों के लाभ पर टैक्स लिया जाता है। सहकारी समिति केवल अपने सदस्यों को ही ऋण दे सकती है; किन्तु रजिस्ट्रार की अनुमति से वह दूसरी सभाओं को भी ऋण दे सकती है। बिना रजिस्ट्रार की आज्ञा के असीमित दायित्व वाली सभा चल-सम्पत्ति की जमानत पर भी ऋण नहीं दे सकती। (धारा २९)।

सहकारी-सभाएं अपने उपनियमों द्वारा तथा रजिस्ट्रार द्वारा निश्चित अधिकतम ऋण सीमा (M. C. L.) से अधिक ऋण तथा अमानतें नहीं ले सकती। इसी कारण प्रत्येक सभा प्रति वर्ष अपनी साख निर्धारित करती है। सहकारी सभाएं उन व्यक्तियों का रुपया भी जमा कर सकती हैं जो सदस्य नहीं। (धारा—३०)।

सहकारी सभा निम्न स्थानों में अपना धन जमा कर सकती है (१) सरकारी सेविंग्स बैंक में, (२) ट्रस्टी सिक्योरिटी में, (३) अन्य सहकारी सभा के भागों में, और (४) किसी ऐसे बैंक में, जिसकी अनुमति रजिस्ट्रार ने दे दी हो। (धारा—३२)।

साधारणतया सहकारी सभाओं का लाभ तथा उसका जमा किया हुआ कोष बांटा नहीं जा सकता; परन्तु निम्न दशाओं में बांटा जा सकता है। सीमित दायित्व वाली सभाओं में ¼ लाभ रक्षित-कोष में डाल कर शेष लाभ बांटा जा सकता है। एतदर्थ रजिस्ट्रार की अनुमति लेनी पड़ती है। असीमित दायित्व वाली सभाओं का लाभ प्रांतीय सरकार की अनुमति

से बांटा जा सकता है। रक्षित-कोष (Reserve Fund) या तो सभा के व्यापार में लगाया जाता है या रजिस्ट्रार की आज्ञा से जमा करा दिया जाता है। सभा के भंग होने पर ऋण चुकाने के बाद जो रुपया बचे उसका उपयोग सभा के निर्णय अनुसार होगा। यदि वह निर्णय न कर सके तो रजिस्ट्रार जिस प्रकार चाहे, उपयोग कर सकता है। लाभ बांटने में यह प्रावधान है कि भाग-मूल्य का १०% से अधिक किसी वर्ष लाभ-रूप में नहीं बांटा जा सकता। सभा-लाभ का उपयोग निर्धन-सहायता, सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य-सहायता आदि में खर्च हो सकता है परन्तु विशुद्ध धार्मिक कृत्यों में नहीं। (धारा—३४)।

जिलाधीश, सभा की प्रबंध समिति अथवा सभा के $\frac{१}{३}$ सदस्य यदि मांग करें तो रजिस्ट्रार स्वयं अथवा किसी अधीनस्थ कर्मचारी से सहकारी सभा की जांच करवाएगा। रजिस्ट्रार स्वयं भी जब चाहे जाँच कर करवा सकता है। (धारा—३५) ।

यदि सभा का कोई लेनदार जांच कराना चाहे तो वह रजिस्ट्रार से प्रार्थना करे। ऐसी अवस्था में उसे जांच का खर्च भी देना पड़ेगा (धारा —३६)।

सहकारी सभा निम्न दशाओं में भंग हो जाती है:

(१) यदि किसी लेनदार की प्रार्थना पर रजिस्ट्रार ने जांच करवाई हो और उसे यह प्रतीत हो कि सभा को भंग कर देना चाहिए।

(२) यदि सभा के तीन-चौथाई सदस्य उसको भंग कर देने की प्रार्थना करें और रजिस्ट्रार उसे स्वीकार करे। ऐसे निर्णय की अपील प्रांतीय सरकार के पास दो मास के भीतर हो सकती है।

(३) यदि सभा के सदस्यों की संख्या १० से कम हो जाय (धारा ३९—४०)।

सभा के भंग हो जाने पर रजिस्ट्रार एक परिसमापक (liquidator) नियुक्त करता है, जिसका कर्त्तव्य सभा के लेनदेन तथा संपत्ति का पूरा-पूरा हिसाब बनाना; ऋण चुकाना और प्राप्तव्य रकमें वसूल

करना होता है (धारा ४१—४२)।

रजिस्ट्रार मध्यस्थता के अधिकार प्रयोग करते हुए मध्यस्थ की नियुक्ति कर सकता है। मध्यस्थ के निर्णय की अपील रजिस्ट्रार के पास हो सकती है। मध्यस्थता का निर्णय अदालती निर्णयों की नांई परिचालित होते हैं और अदालतों द्वारा निष्पादित होते हैं।

प्रांतीय सरकारों को नियम बनाने के अधिकार भी इस अधिनियम के अधीन दिये गए हैं।

इस अधिनियम के बन जाने के पश्चात केंद्रीय सहकारी सभाओं तथा अन्य प्रकार की सहकारी सभाओं के बनने तथा रजिस्ट्री होने के द्वार खुल गए; परन्तु मूलतः सहकारी सिद्धांतों की पृष्ठभूमि संकीर्ण तथा अनुदार ही रही। अधिनियम के प्रारंभिक शब्दों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया गया जिससे सहकारिता को मानवता के मूल स्वभाव के अनुरूप बनाया गया हो। फिर भी सहकारिता का आन्दोलन आगे बढ़ा, विस्तृत भी हुआ, देसी राज्यों में भी फैला; परन्तु मानव-मानव की मौलिक एकता के विश्वास से जो स्नेह की भावना-सृष्टि होती है और उससे जो दूसरे के लिए त्याग करके आनन्दानुभव होता है और जो वास्तविक सहयोग की वृत्ति का बीज है, उस बीज के, परिस्फुटित होने में इस अधिनियम ने कोई सहायता नहीं दी। इस सैद्धांतिक प्रश्न पर कहीं अन्य उपयुक्त स्थल पर विचार किया जायगा। यहां तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस अधिनियम का प्रसार तत्कालीन ब्रिटिश भारत के अतिरिक्त देसी राज्यों में भी हुआ। केंद्रीय सहकारी संस्थाओं की संख्या १७ से बढ़कर २३१, प्रारंभिक सभाओं की संख्या १९०९ से बढ़कर ११,५५५ हो गई। सदस्य-संख्या १,६१,९१० से बढ़कर ५,४८,२५३ हो गई। आन्दोलन को और आगे बढ़ाने से पूर्व भारत सरकार ने विचार किया कि आन्दोलन की आर्थिक उपयोगिता तथा आन्दोलन की पुष्टता की जांच कर ली जाय।

इस जांच के लिए मैक्लेगन कमेटी का निर्माण हुआ। सन् १९०४ से इस कमेटी के निर्माण तक आन्दोलन की गति-विधि का पता निम्न

तालिका से चलता है, जिसमें प्राथमिक सभाओं के आंकड़े हैं :

वर्ष	सभा संख्या	सदस्य संख्या	चालू धन (रु. में)
१९०६-७	८३२	८८,५८२	....
१९०७-८	१३५०	१,४८,६९८	४१,७५,२११
१९०८-९	१९४८	१,७९,१४४	७२,२५,११९
१९०९-१०	३३९७	२,२०,६७६	१,०१,२९,२३२
१९१०-११	५,२६२	२,९९,३७६	१,५३,३१,७०२
१९११-१२	८,०५७	३,९१,९५७	२,३५,८८,३५८
१९१२-१३	११,५४८	५,१३,८५१	३,३३,०१,६०३
१९१३-१४	१४,५६६	६,६१,८५९	४,६४,२७,८४२

कुल सभाओं के आंकड़े इस प्रकार हैं:—

१९०६-७	८४३	९०,८४४	२३,७१,६८३
१९०७-८	१३५७	१,४९,१६०	४४,१४,०८३
१९०८-९	१९६३	१,८०,३३८	८२,३२,२२५
१९०९-१०	३४२८	२,२४,३९७	१,२४,६८,३१२
१९१०-११	५३२१	३,०५,०५८	२,०३,९५,५००
१९११-१२	८१७७	४,०३,३१८	३,३५,७४,१०२

२. मैक्लेगन कमेटी

जिस समय यह कमेटी नियुक्त हुई, उस समय भारत में सहकारिता के वैध प्रवेश को १० वर्ष से कुछ ही अधिक समय हुआ था। इस कमेटी की स्थापना के समय ८ अक्तूबर, १९१४ को जो प्रस्ताव पास किया गया था उसमें भारत सरकार ने कहा था—"समिति का प्राथमिक कर्तव्य इस बात का निरीक्षण करना होगा कि क्या सहकारिता का यह आंदोलन अपने उच्च-स्तर में तथा अपने वैत्तिक पहलू में सुस्थिर दिशा में उन्नति कर रहा है या नहीं ? और इसके विकास के निमित्त वह ऐसे सुझाव दे जो वह उचित

समझे। इसलिए प्रधानतः ऐसे विषयों की जांच होगी जो केन्द्रीय तथा प्रान्तीय बैंकों के नियंत्रण-पत्र, संगठन, कार्य-विधि, कार्यक्रम, विभिन्न प्रकार के सहकारी संगठनों के पारस्परिक वित्तीय सम्बन्ध, लेखा-परीक्षण, सब प्रकार की सहकारी सभाओं के निरीक्षण, सुरक्षित कोष के उपयोग तथा उसके वार्षिक हिसाब-किताब के प्रदर्शन से संबधित होंगे। भारत सरकार की यह भी इच्छा नहीं कि किसी सख्ती से जांच की संभावनाओं को सीमित किया जाय। समिति को अपनी इच्छानुसार यह अधिकार रहेगा कि सहकारिता के आन्दोलन के किसी भी आवश्यक पहलू पर विचार करके उसके सम्बन्ध में प्रस्ताव करे।"

इस समिति की पहली बैठक १६ नवम्बर १९१४ को हुई। उसके पश्चात ४ मास तक समिति ने भारत का दौरा किया और इस पर्यटन में इसने विभिन्न प्रकार की १३५ सभाएं देखीं। ९३ गवाहों के बयान लिखे। इसके अतिरिक्त बैंकों तथा सभाओं के मैनेजरों या सेक्रेटरियों से पूछ-ताछ की। उस समय भारत के विभिन्न प्रान्तों में सहकारी वर्ष भिन्न-भिन्न थे; बम्बई, आसाम में ३१ मार्च; बिहार, उड़ीसा में, ३१ मई; यू. पी., मध्य प्रान्त, मद्रास, बंगाल, बर्मा, कुर्ग, अजमेर में ३१ जून और पंजाब में ३१ जुलाई को वर्षान्त होता था। समिति ने सहकारिता के सभी पहलुओं पर विचार किया और एक पूर्ण विश्लेषण-सहित रिपोर्ट लिखी। यह रिपोर्ट भारत में सहकारिता-आन्दोलन की बाइबिल बन गई और इसको ऐसा महत्त्व प्राप्त होना भी स्वाभाविक था, क्योंकि सहकारिता के आन्दोलन को इसी रिपोर्ट ने भारत में एक व्यक्त, स्पष्ट तथा नियंत्रित स्वरूप दिया। इसी रिपोर्ट ने शासन के हर विभाग पर सहकारिता की आवश्यकता प्रकट की। आज भी इसी के निर्देशों के अधीन विभाग काम कर रहा है। अतः इस रिपोर्ट की सिफारिशों का एक संक्षिप्त विवरण देना उचित जान पड़ता है। इस समिति ने सर्वप्रथम दो बातों की ओर ध्यान दिया है (१) आन्दोलन का ध्येय और (२) इसका नैतिक आधार। समिति का कहना है—

"क्योंकि सहकारिता के उद्देश्य हमेशा ठीक तौर पर नहीं समझे जाते

रहे, अतः इसके प्रधान उद्देश्य का उल्लेख बहुत आवश्यक है, और वह यह कि भारत की बहुसंख्यक ग्रामीण जनना, विशेषतः कृषक-वर्ग में जो जड़ता आ गई है, उसे हटाया जाय, जिससे वह अवनत दशा में न रह जाय। उसकी अवनति का मुख्य कारण है नई शिक्षा प्राप्त करने तथा दशा सुधारने में अनिच्छा। इस हीनावस्था का प्रकट दृश्य था साहूकारों का बढ़ता हुआ व्याज तथा कृषकों से भूमि हथियाने की योजना। सहकारिता का साधन इसलिए भी अधिक उपयुक्त था, क्योंकि यह केवल आर्थिक अथवा दृश्य जगत की बुराइयों पर ही आक्रमण नहीं करता था वरंच अंतर्निहित नैतिक पतन को भी दूर करने की क्षमता रखता था। अतः सहकारिता के सिद्धान्त का संक्षेप से यह अर्थ है—

> एक अकेला तथा बलहीन व्यक्ति शेष लोगों के साथ सहयोग करने से, अपने नैतिक उत्थान तथा पारस्परिक सहायता से पर्याप्त मात्रा में उन बाह्य जगत के आराम के साधनों को प्राप्त कर सकता है जो धनवान तथा बलशाली व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं और इस तरह वह अपनी प्राकृतिक योग्यता की सीमा तक विकसित हो सकता है।

आमतौर पर जनता और विभाग के कर्मचारी भी आन्दोलन के नैतिक पहलू को व्यर्थ आदर्शवाद कह कर उसकी अवहेलना करते हैं; परन्तु हम यह लिखे बिना नहीं रह सकते कि सरकार को उस सहकारिता की ओर ध्यान देना चाहिए जो बाह्य जगत के सुखों के साथ-साथ आन्तरिक नैतिक तत्व को भी यथार्थ महत्व देती है, न कि उस सहकारिता की ओर, जिसमें सहकारिता के मौलिक सिद्धान्तों की ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता। वस्तुतः यह नैतिक तत्व ही सहकारिता के साधन में, सरकार द्वारा उपयोग किये गए अन्य साधनों से भिन्नता का परिचायक है।" (रिपोर्ट वाक्य—१-२)

कुल रिपोर्ट के ६ अध्याय हैं। पहले अध्याय में भारत में सहकारी आन्दोलन का वर्णन है। कहना नहीं होगा कि यह अध्याय सहकारिता के सिद्धान्तों तथा उसके भारत में सफलतया परिचालन के उपायों के सम्बन्ध

में है और जो सुझाव इस सम्बन्ध में समिति ने दिये हैं उनकी उपयोगिता आज भी कम नहीं हुई है। सहकारिता के पाठक अथवा कार्यकर्ता को इस अध्याय का अध्ययन करना चाहिए। दूसरे अध्याय में प्राथमिक सभाओं का पूर्ण विवरण एवं प्रस्तावों सहित ब्यौरा है। तीसरे में केन्द्रीय बैंकों का उल्लेख है। चौथे में प्रान्तीय बैंकों का और पांचवें में सरकारी सहायता का वर्णन है। अध्याय ६ में पुनः रिपोर्ट का सारांश दिया गया है परन्तु यह संक्षेप विवरणात्मक है प्रस्तावनात्मक नहीं। क्योंकि इस रिपोर्ट का भारत के सहकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है अतः उक्त रिपोर्ट के प्रारंभ में दिये हुए सार में से कतिपय आवश्यक अंश नीचे दिये जाते हैं ताकि पाठक उस पृष्ठभूमि से परिचय प्राप्त करें जिसके अधीन इस आन्दोलन ने आज तक नहीं तो कम-से-कम १९४७ तक भरण-पोषण तथा प्रगति प्राप्त की :

प्राथमिक सभाएं

(१) साधारणतया कृषि-साख सहकारी सभाओं के थोड़े सदस्य होते हैं। दस से कम तो हो नहीं सकते। कई बार निर्धन लोग इकट्ठे होकर सभा बना लेते हैं। उनके हिस्सों द्वारा जमा किया हुआ धन, अथवा उनकी अपनी चल व अचल सम्पत्ति पर अवलम्बित अधिकतम ऋण-सीमा भी पर्याप्त साख प्राप्त नहीं करा सकती। फिर भी उन्हें ऋण मिलते हैं। यदि सारी सम्पत्ति कर्जदारों की बेच दी जाय तो भी ऋण की वापसी नहीं हो सकती। अतः स्पष्ट है कि इन सभाओं की वास्तविक साख उनका सदाचार है, अर्थात् उनकी ऋण चुकाने की इच्छा तथा उत्पादक कार्यों में ऋण प्रयोग करने की उनकी योग्यता, जिससे कमाये हुए लाभ से वह ऋण अदा कर सकते हैं।

(२) हर ऋण का यह अर्थ होना चाहिए कि उसी मात्रा में ऋण लेने वाले की कमाने की योग्यता में वृद्धि और उत्पादन में उन्नति हो। वापसी की गारंटी ऋण लेने वाले के इस ज्ञान में होती है कि यदि वह ऋण-राशि

नही लौटायगा तो उसकी समस्त सम्पत्ति उससे छिन जायगी । और फिर सब पर असीम उत्तरदायित्व एक-दूसरे को प्रभावित करने के लिए बाधित करता है कि वह कही ऐसा ऋण न ले जिसका उत्तरदायित्व अन्यों पर भी पड़े । इस प्रकार सब एक दूसरे के ऋणो के सम्बन्ध में सतर्क रहते है । इस तरह लोगों के चरित्र पर एक नया प्रभाव पडता है, जिससे ईमानदारी तथा बचत की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है । साथ ही संगठन तथा सहकारिता की भावनाएं जागृत होती हैं, साझे उद्देश्य पनपते है और संगठन के सामने साझे ध्येय का वास्तविक स्वरूप आता है । अतः हमारी मंत्रणा यह है कि सभाएं पहले सहकारिता की भावनाओं से परिपूर्ण होनी चाहिएं और दूसरे उनमें व्यापारिक कुशलता होनी चाहिए ।

(३) एक सभा को सहकारी होने के लिए कई शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं । सहकारिता के मूल में यह सिद्धान्त होता है कि निर्बल व्यक्तियों को अपनी वैयक्तिक उत्पादन-क्षमता बढ़ाने के योग्य बनाया जाय, और उसके फल-स्वरूप संगठित होकर वह अपनी चारित्रिक तथा आर्थिक उन्नति करे । इस तरह आर्थिक होते हुए भी यह आंदोलन चारित्रिक उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण है । यह समाजवादी होने की अपेक्षा अधिक व्यक्तिवादी है । वैत्तिक पूंजी के कमाने में यह ईमानदारी तथा चारित्रिक उत्तरदायित्व का धन प्राप्त करवाता है । अतः स्पष्टतया पहले आवश्यकता यह है कि सदस्यों को सहकारिता के सिद्धान्तों का पर्याप्त ज्ञान हो । तभी सहकारिता वास्तविक रूप में पनप सकती है । सभा के निर्माण में मुख्य आवश्यकता यह है कि चुनाव बड़ी सावधानी से किये जायं । सदस्य ऐसे होने चाहिएं जो ईमानदार हों या कम-से-कम भविष्य के लिए ईमानदारी से जीवन-यापन की प्रतिज्ञा करें; ऋण कभी भी सट्टेबाजी आदि के कामों के लिए नहीं होना चाहिए और सदस्यों को ही दिया जाना चाहिए । कमेटी के सदस्यों को ऋण देने के बाद भी सतर्क रहना चाहिए कि वह ऋण उसी कार्य में लगाया जाता है या नहीं, जिसके लिए वह लिया गया था । यदि वैसा न किया गया हो तो ऋण उसी समय वापस ले लेना चाहिए । व्यक्तिगत जमानतें लेकर

इस सतर्कता को अधिक पुष्ट करना चाहिए। कमेटी के सदस्यों को निःशुल्क सेवा करनी चाहिए। पदाधिकारियों को सम्पूर्ण सत्ता कभी नहीं देनी चाहिए। यह सत्ता साधारण जन-समुदाय के पास ही रहनी चाहिए ताकि सब सदस्यों का सभा-कार्य में ध्यान लगा रहे। इसी ध्येय को प्राप्त करने के लिए एक सदस्य का एक मत (vote) होना चाहिए और सभा-कार्य का पर्याप्त प्रचार होना चाहिए। ऋणों की सूची ऐसी जगह रहनी चाहिए जहां उसका सब सदस्य निरीक्षण कर सकें। सब की साधारण (General) बैठकें काफी जल्दी-जल्दी होती रहनी चाहिएं और उनमें सभा के हिसाब-किताब पर पूरे तौर पर विचार होना चाहिए। सभा का व्यक्त ध्येय बचत के स्वभाव का विकास होना चाहिए जिससे बचत की आदत आस-पास के क्षेत्रों में भी फैले। सब सदस्यों में यह भाव जाग्रत करना चाहिए कि सभा उनकी अपनी है। साथ-साथ लाभ से एक सुरक्षित कोष (Reserve fund) बनाना चाहिए। पूंजी का संग्रह भी बचत द्वारा करना चाहिए। इसके लिए पर्याप्त आन्तरिक नियंत्रण होना चाहिए। इन सब बातों के साथ व्यापार में, ईमानदारी, समय पालन, ठीक हिसाब-किताब रखना, चातुर्य तथा समय पर ऋणों की वापसी, के नियमों की ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिए। सदस्यों को पूर्णतया सतर्क रहना चाहिए। सहकारिता के सिद्धान्तों का प्रशिक्षण, बैठकों में कार्य का पूरा विचार-विमर्श, आदि ऐसे कार्य हैं, जिनकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(४) **नई समस्याएं तथा उनका क्षेत्र**—सभा के निर्माण में बहुत ही सावधानी तथा सतर्कता से काम लेना चाहिए। रजिस्ट्रार को तभी रजिस्ट्री करनी चाहिए जब उसे यह विश्वास हो जाय कि समिति के होने वाले सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों तथा कर्तव्यों को भली प्रकार समझ गए हैं और उनका अनुकरण करने के लिए तैयार हैं। साथ ही उनमें ऐसा करने की क्षमता भी है। केवल अफसरी प्रचार द्वारा प्राथमिक सभाओं की संख्या को बढ़ाना एक भीषण भूल है। सभा-सदस्य एक-दूसरे के परिचित होने चाहिएं ताकि वे जान सकें कि कौन विश्वसनीय है और कौन नहीं, जिससे ठीक ढंग

से निगरानी कर सकें। अतः बड़ी-बड़ी सभाएं नहीं बनानी चाहिएं। बड़ी-बड़ी सभाओं में व्यक्तिगत रूप में सदस्य सभा-कार्यों पर ध्यान नहीं दे सकते। अतः ऐसी सभाएं कुछ काल तक प्रगति करती हैं; परन्तु शनैः-शनैः उनका सहकारी दृष्टिकोण शिथिल पड़ जाता है। और वह ग्रामों की ऋणदायिनी संस्थाएं मात्र बन कर रह जाती हैं।

(५) **ऋण की अवधि तथा उसकी वापसी**—ऋण प्रदान करने के पूर्व सभा के लिए यह जरूरी है कि वह ऋण के प्रयोजन तथा ऋणी के आर्थिक साधनों को ध्यान में रखते हुए यह निश्चय करे कि वस्तुतः ऋण की वापसी की अनुमानतः कब तक आशा की जा सकती है। जब इस अवधि का एक बार विश्वास कर लिया जाय तब उस पर पूरे तौर पर अमल करना चाहिए। रस्मी तौर पर ऋण प्रदान एक बड़ी खतरनाक पद्धति है जो सहकारी सभाओं में प्रचलित है। इसका फल होता है ऋणों की वापसी में कोताही। कृषि-सम्बन्धी ऋण कृषि-चक्र (agricultural cycle) के अनुसार प्रवाहित होना चाहिए। यह समय वापसी के लिए कुछ मास या एक वर्ष भी हो सकता है; परन्तु आमतौर पर दो से पांच वर्ष तक चलता है। जहां पर वर्षा अथवा अन्य साधन ऐसे हों कि कोई फसल न टूटती हो वहां वापसी साधारणतया १२ मास तक हो जानी चाहिए। परन्तु जहां जल-वायु ऐसा हो कि फसलों की प्राप्ति में अनिश्चितता हो, वहां वापसी के लिए कुछ वर्ष देने चाहिएं। परन्तु साधारणतया ऋण एक वर्ष की अवधि के लिए देना चाहिए।

(६) **ऋणों पर ब्याज की दर**—आमतौर पर कहा जाता है कि जनता को सहकारी सभाओं की ओर आकर्षित करने के लिए ब्याज की दर कम होनी चाहिए; परन्तु इससे ऋण लेने की आदत को बढ़ावा मिलता है। अतः सभाओं को आम साहूकारों की ब्याज-दरों से तो काफी कम ब्याज लेना चाहिए; परन्तु फिर भी ब्याज के उचित दर अवश्य रहने चाहिएं। यथा ज़हां साहूकार की ब्याज-दर ३६, ४८, व ६० प्रतिशत हो वहां सभा को १५ या १८ प्रतिशत दर से प्रारम्भ करना चाहिए। जहां व्यापाराना ८

या ९ प्रतिशत हो वहां यह जरूरी नहीं कि सभा के दर और सस्ते किये जायं। सभा द्वारा लिया हुआ ब्याज यदि मंहगा भी हो तो भी उसकी आय की हर पाई सदस्यों को ही जाती है। रजिस्ट्रार को इस विषय की ओर पूर्ण रूपेण सतर्क रहना चाहिए और ब्याज की दर-निर्धारण के अधिकार रजिस्ट्रार के पास ही होने चाहिएं।

(७) **व्यापारिक पहलू तथा पूंजी के स्रोत**—(क)—**बाहर से प्राप्त अमानतें**—जहां तक अमानतें स्थानीय तथा सभा के कार्य में विश्वास द्वारा प्राप्त हों, उनके हासिल करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। भले ही ये अमानतें सदस्यों से प्राप्त हों या अन्यों से। भविष्य में आन्दोलन की उत्पत्ति का अनुमान अमानतों के बढ़ने से हो सकता है। बाहर से पूंजी-प्राप्ति का प्रधान साधन केन्द्रीय बैंक से प्राप्त होने वाले ऋण होते हैं। जो कभी तो रजिस्ट्रार द्वारा और कभी केन्द्रीय वित्तीय संस्था द्वारा अनुमोदित होने पर मिलता है। ऋण देने से पूर्व यूनियन की अथवा विभाग की जैसी भी दशा हो, कर्मचारियों द्वारा पड़ताल कराई जाती है। इस क्रम को संक्षिप्त करने के लिए एक ऋण-सीमा भी हर संस्था की निश्चित कर ली जाती है। और उसके बाद संस्था की आर्थिक स्थिति के अनुसार ऋण कम या ज्यादा दिया जाना चाहिए।

(८) स्वीकृत ऋण जिन शर्तों पर दिया जाता है, वह विभिन्न राज्यों में विभिन्न होता है, जिन पर अलग-अलग दरों पर ब्याज लगाया जाता है तथा वापसी होती है। साधारणतया ब्याज नियमपूर्वक प्रतिवर्ष व हर छ-माही में देना होता है। परन्तु मूल की वापसी की शर्तें भिन्न-भिन्न होती हैं। कहीं मूल की वापसी किस्तों द्वारा होती है और सारी रकम की वापसी निश्चित अवधि के पश्चात होती है। साधारणतया वापसी ३-४ वर्ष में हो जानी चाहिए और वह वार्षिक किस्तों द्वारा हो या एक ही बार। ब्याज की दर ७ से ९ प्रतिशत प्रतिवर्ष साधारणतया ली जाती है। सदस्यों को आगे ऋण देने का भार व अधिकार सभा का ही होता है। साधारणतया सभा को अपने सदस्यों से किस्तें प्राप्त करनी हों तो ऊपर लिखे अनुसार वे ली

जाती है । किसी भी सभा की शक्ति तथा कार्य-निपुणता की वास्तविक कसौटी किस्तों का समय पर दिया जाना है । यह ठीक है; परन्तु ऐसा न होने पर उल्टा नतीजा नहीं निकाला जा सकता । यह हो सकता है कि सभा अपनी किस्तें अमानतों से देती हों और उसके ऋणी रुपये का दुरुपयोग करते हों और उनसे ऋण की वापसी न कराई जाती हो, या सदस्य किसी साहूकार से रुपया लेकर किस्तें अदा करते हों और नया ऋण लेकर उनकी अदायगी करते हों, जो कोई उत्पादक ध्येय प्रकट करके लिया गया हो; अतः एक अवहेलनाशील भी अदायगी समय पर करता हो । उसे निपुण व कार्यकुशल नहीं कहा जा सकता । ऐसी दशा का पता सभा के हिसाब की छान-बीन, पूर्ण निरीक्षण तथा स्थान पर पड़ताल द्वारा ही लगाया जा सकता है । सभा के पर्यवेक्षण में विशेष ध्यान रखना चाहिए कि अदायगियां वास्तविक होती हैं या नहीं । और इस दशा के अवलोकन के निमित्त केवल केन्द्रीय वित्तीय संस्था द्वारा भेजी गई तालिकाओं पर ही भरोसा नहीं किया जा सकता ।

(९) **साख का मूल्यांकन**—हर वर्ष सभा की साख का निश्चय भी ध्यान से होना चाहिए जिसकी सीमा के भीतर ही सभा ऋण तथा अमानतें प्राप्त कर सकती है । अभी तक इस पर रजिस्ट्रार का ही नियंत्रण रहना चाहिए । साख की उपरोक्त सीमा से ज्यादा ऋण अथवा अन्य वैत्तिक जिम्मेदारी उठाने की अनुमति नहीं दी जायगी । समिति की अपनी प्रवाह-शील राशि भी पर्याप्त होनी चाहिए ।

(१०) **स्वत्वाधीन राशि तथा अधि-सम्पत्ति** (Owned Funds and Surplus assets)—सभा के आन्तरिक आर्थिक स्रोत हैं भाग-राशि तथा सुरक्षित कोष । इस समय बहुत-सी सभाओं की नहीं के बराबर भाग-राशि है । गरीब किसान से पर्याप्त मात्रा में धन भागों के काम में लगाने की आशा नहीं की जा सकती । परन्तु ज्योंही यह प्राप्त हो जाय, भले ही वह किस्तों द्वारा प्राप्त हो, तो वह बचत हेतु सफल प्रोत्साहन देता है तथा सहज पूंजी प्राप्त करवाता है । स्वत्वाधीन धन-राशि

के लिए सभाओं को अपने सुरक्षित कोष तथा अधि-सम्पत्ति का ही आश्रय लेना होता है। •

(११) **सभाओं का निरीक्षण तथा लेखा-परीक्षण**—इसलिए कि सभा पूर्णतया सहकारी तथा व्यापारिक हो, आवश्यक है कि वह कार्य के ऊंचे स्तर को कायम रखे। परन्तु किसानों व ग्रामीणों की सभाओं मे ऐसे स्तर को कायम रखने की आशा करना संभव नही। ऐसी अवस्था मे लेखा-परीक्षण (audit) तथा निगरानी की महत्ता बढ जाती है। प्रथमतः आडिट का काम संघों तथा केन्द्रीय बैंकों के अधीन होना चाहिए, परन्तु अन्ततोगत्वा इस कार्य की सम्पूर्ण जिम्मेदारी रजिस्ट्रार पर ही होनी चाहिए। इसका यह आशय नही कि सारा काम सरकार पर ही पड़े और वही सारा खर्च दे। हर सभा का रजिस्ट्रार के प्रतिनिधि द्वारा पूरा-पूरा लेखा-परीक्षण होना जरूरी है। प्रवाहशील सभाओं की निगरानी संघों का कार्य होना चाहिए। इसके लिए जो कर्मचारी-समुदाय रखा जायगा उसके वेतन आदि का व्यय सभाओं द्वारा प्राप्त शुल्क से पूरा हो सकेगा; परन्तु फिर भी इससे रजिस्ट्रार का उत्तरदायित्व कम नही होता। उसे देखना होगा कि केन्द्रीय संघों का पर्यवेक्षण गलत दिशाओं की ओर प्रवाहित न हो और वह सहकारी सिद्धान्तों से विचलित न हो।

(१२) **बढ़ते हुए नियंत्रण की आवश्यकता**—जिस प्रगति से आन्दोलन में वृद्धि हुई है, उसको देखकर कोई इन्कार नहीं कर सकता कि आन्दोलन ने एक व्यापक स्वरूप धारण कर लिया है और देश में इसकी स्थिति दृढ़ हो गई है। परन्तु ऐसी अवस्था में आन्दोलन का दुरुपयोग न होने देने के लिए बढ़ती हुई धनराशि को ठीक ढंग से प्रयोग में लाना जरूरी है इसके लिए आन्दोलन को अपने ध्येय में ही केन्द्रित रखना जरूरी है ताकि वह अन्दर से खोखला होकर पतन को प्राप्त न हो।

इस आन्दोलन की अनेक संभावनाएं है। यही आंदोलन देश की सम्पत्ति तथा समृद्धि को बढा सकता है। यही भारतीय कृषकों को ऋण के बोझ से मुक्त कर सकता है; परन्तु इसमें बुराई भी हो सकती है, जिसका

सदैव ध्यान रखना चाहिए। सहकारिता के सिद्धान्तों का प्रशिक्षण कम होने के कारण इस आन्दोलन का दुरुपयोग भी हो सकता है। आन्दोलन के विस्तार के साथ-साथ रजिस्ट्रार तथा उसके कर्मचारी-वर्ग में विस्तार नहीं हो सका है और जो आन्दोलन में दोष आगए हैं उनका कारण पर्यवेक्षण की कमी है। इसका इलाज यही है कि पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण पर्याप्त हो। अतः रजिस्ट्रार को सहकारी-संगठनों के कार्य से पूर्ण जानकारी होनी चाहिए ताकि पर्यवेक्षण तथा प्रशिक्षण द्वारा सहकारिता को वह बल दे। इसके बिना सहकारिता का विकास नहीं हो सकता। वर्तमान कर्मचारी-समुदाय पर्याप्त नहीं है। अतः हमारा प्रस्ताव है कि हर बड़े प्रान्त में एक सहायक रजिस्ट्रार होना चाहिए जिसका दर्जा कलक्टर के बराबर हो। जहां सभाओं की संख्या अधिक हो, वहां १००० सभाओं के लिए एक नियत्रण करनेवाला शक्ति-सम्पन्न अधिकारी होना चाहिए। हां, यह आवश्यक है कि चुने हुए ये व्यक्ति विशेष योग्यताओं से युक्त होने चाहिएं। इनका वेतन भी इस दुर्गम कार्य के अनुसार ही होना चाहिए। रजिस्ट्रार का अधिकार कलक्टर के समान होना चाहिए।

यह भी आवश्यक है कि जिलाधीश इस आन्दोलन से अपने-आपको पद के नाते पृथक न माने और न रजिस्ट्रार की शक्तियां प्रयोग में लाये। वह अपनी कार्य-व्यस्तता में इस कार्य पर ध्यान भले ही न दे; परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी उसे यह अनुभव करना होगा कि यह एक बड़ा महत्वशाली आन्दोलन है और इस जिला के भले-बुरे का बहुत हद तक जिम्मेदार है। अतः उसे आन्दोलन की प्रगति से पूर्णतया परिचित रहना चाहिए।

(१३-१४) **केन्द्रीय तथा प्रान्तीय बैंक**—जहां तक साधारण व्यापार का सम्बन्ध है इन संस्थाओं को ऋण देने के कार्य में पर्याप्त स्वतंत्रता नहीं रही है। पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण-कार्य में इनका पूर्ण उपयोग नहीं किया गया है। संघों की अनुपस्थिति में प्राथमिक सभाओं को पर्यवेक्षण का अधिकतर भार इन संस्थाओं पर ही होना चाहिए। यदि उसके संचालक (डाइरैक्टर)

सावधानी से चुने गए हों तो इस कार्य के लिए वह संस्था पूर्णतया उपयुक्त है। परन्तु इस प्रकार के बैंकों में सहकारी-सभाओं के ही प्रतिनिधि होने के कारण ये बैंक साधारण मध्यम-वर्ग के व्यक्तियों की सहानुभूति प्राप्त नहीं कर सकते, हालांकि यह वर्ग बैंकों का काम बड़ी सफलता से कर सकता है। यदि इस कठिनाई पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो यह बैंक सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं और यह भी ठीक है कि सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार इस आवश्यक कड़ी की सदस्यता समितियों तक ही सीमित रहनी चाहिए। प्रबन्ध की क्षमता किसानों में आते-आते समय तो लगेगा ही। हमारे विचार में सबसे श्रेष्ठ पद्धति यह होगी कि संचालक-मण्डल (Directorate) के कुछ सदस्य व्यापारियों से लिये जाते हों और कुछ सभाओं के प्रमुख प्रतिनिधियों से। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि नियंत्रण सहकारी-समितियों के हाथ में रहना चाहिए, न कि व्यक्तियों के हाथ में। शनैः-शनैः प्रयत्न यह होना चाहिए कि आखिर में प्रबन्ध सहकारी-समितियों के हाथ में ही आ जाय।

(१५) बैंकों की प्रवाहशील पूंजी पर्याप्त मात्रा में रखी जानी चाहिए, जो नहीं रखी जाती। इसका कारण या तो यह होता है कि लाभांश-प्राप्ति की इच्छा प्रबल होती है या यह भी हो सकता है कि सुरक्षित कोष के बल पर खतरा ले लिया जाता है। सभाओं की संख्या शीघ्र बढ़ जाने के कारण केन्द्रीय बैंक पर कार्य-भार बढ़ जाय अथवा सभाओं को जो रुपया दिया जाता है उसपर व्याज की दर में तथा जिस दर पर बैंक को रुपया प्राप्त होता है, उसमें भेद बहुत कम रहता है जिससे प्रवाहशील पूंजी जमा नहीं होती। फल-स्वरूप बैंक सरकार की ओर सहायता के लिए देखता है और सरकार का खयाल केवल यह होता है कि रुपया ऐसी जगह लगाया जाय जहां हानि का भय न हो। कोई भी अवस्था हो, प्रवाहशील पूंजी का होना बहुत जरूरी है।

(१६-१७) आम तौर पर बैंकों का प्रबन्ध ईमानदारी से होता है और अपने अधिकारों के अन्दर कुशलता से भी होता है। साधारणतया

इनका काम प्राथमिक समितियों को ऋण देना है। अधिकतर अमानत जमा करनेवाले हिस्सेदार ही है। ये लोग साधारणतया आवश्यकता होने पर भी बैंक को तंग नहीं करते। उनको भले ही रुपये की आवश्यकता हो। ऐसी दशा में उनको बाहर से अमानतें नहीं लेनी चाहिएं जबतक इनके समय पर अदायगी के लिए पर्याप्त साधन न हों। ऐसी अवस्था का पहला इलाज यह है कि हर प्रान्त में एक सुदृढ़ शिखरीय बैंक (Apex bank) हो, जिससे ही केन्द्रीय बैंक ऋण ले और अपने से सम्मिलित सभाओं की सेवा करे। इस बैंक से प्रान्तीय बैंक संबद्ध होने चाहिएं।

(१८) भारत में सहकारी बैंकों का कार्य नया है और संयुक्त पूंजी बैंकों से साधारणतया भिन्न हैं। प्रवाहशील पूंजी की समस्या ऐसी है जिसपर शीघ्रता से काबू नहीं पाया जा सकता। यूरोप में ऐसी कठिनाइयां आईं और वहां पर सहकारी हुण्डियों के परिचलन द्वारा इसपर विजय पाई गई। ऐसी हुण्डियां सकारने के लिए या तो सहकारी बैंक बनाये गए या सरकारी बैंकों द्वारा सकारी गईं।

(१९) **अन्य सुझाव**—रजिस्ट्रार के कर्मचारियों में वृद्धि होनी चाहिए। कृषि तथा उद्योग से सम्बन्धित विभाग के कार्यक्रम को सहकारिता से सम्बद्ध करना चाहिए और इनका अध्यक्ष एक होना चाहिए। एतदर्थ एक विकासाध्यक्ष (Development Commissioner) रखना चाहिए जिसके अधीन यह काम दिये जा सकते हैं। अभी तक इस विभाग को कृषि तथा शिक्षा की तरह महत्त्व प्राप्त नहीं हो सका। हमने यह भी विश्वास पाया कि इस आन्दोलन को सरकार की गारंटी प्राप्त है। विभिन्न अविश्वासों को भ्रामक सिद्ध करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। सरकार को चाहिए कि सब अफसरों को यह स्पष्ट करे कि यह उनका कर्तव्य है कि कोई भ्रममूलक धारणा जनता में न रहने पाय।

मैक्लेगन कमेटी की रिपोर्ट से भारतीय सहकारिता के एक नए युग का प्रारम्भ होता है। भारत की तत्कालीन सरकार ने इस रिपोर्ट की सिफारिशों पर उचित कार्यवाही की। कलक्टरों के लिए निर्देश जारी हुए। लैंड एडमिनि-

स्ट्रेशन रिपोर्ट के पैरा ६६० में सहकारिता के आन्दोलन का प्रबन्ध तथा माल-विभाग पर महत्व प्रकट किया गया। इस रिपोर्ट का वाक्य नं. ३ प्रमाणीकरण रजिस्ट्री के साथ समितियों को दिया जाने लगा, ताकि वह उनके लिए पथ-प्रदर्शक का काम करे। कर्मचारी-समुदाय की संख्या में वृद्धि हुई। रजिस्ट्रार के काम का महत्त्व अनुभव किया जाने लगा। वस्तुतः आंदोलन की हर दिशा में इस रिपोर्ट की छाप स्पष्ट दिखलाई देने लगी। परन्तु उनकी एक विकास कमिश्नर (Development Commissioner) नियुक्त किये जाने की महत्त्वपूर्ण सिफारिश पर अमल नही हुआ। उद्योग व कृषि-विभागको सहकारी विभागके साथ उक्त अधिकारी के अधीन शृंखलाबद्ध नही किया गया। यह रिपोर्ट भारतीय सहकारिता में बड़ा ही महत्त्व रखती है और जहांतक नीति व संगठन का सम्बन्ध है, इस रिपोर्ट का युग आज तक चल रहा है। बम्बई की सरकार ने तो कुटीर-उद्योग के कार्य को सहकारी-विभाग के अधीन कर ही दिया। कृषि और सहकारिता के स्वाभाविक पारस्परिक संबंध को आज अधिक मात्रा में अनुभव किया जा रहा है और इसमे कोई अतिशयोक्ति नही कि यह रिपोर्ट भारत की सहकारिता में अपना एक स्थायी स्थान बना चुकी है। इस रिपोर्ट की सिफारिशो का अनुकरण करता हुआ यह आन्दोलन मन्थर गति से प्रगति करता रहा और सन् १९१९ में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड का सुधार-सम्बन्धी अधिनियम पास हुआ। इसके अधीन सहकारिता-सम्बन्धी अधिनियम (कानून) बनाने के अधिकार प्रान्तों को मिल गए। इन अधिकारों का उपयोग करते हुए बम्बई ने १९२५ में, मदरास ने १९३२ में, बिहार और उड़ीसा ने १९३५ में, कुर्ग ने १९३७ में और बंगाल ने १९४० में अपने-अपने सहकारी-अधिनियम बनाये। साधारणतया सन् १९१२ के मूल अधिनियम को ही इन्होंने अपने सामने नमूना रखा; परन्तु सहकारिता की धारणा को उदार अवश्य बनाया। बम्बई के अधिनियम ने सहकारी समितियों को साधन (Resources), उत्पादक (Producers), उपभोक्ता (Consumers) तथा गृह-निर्माण (Housing) की श्रेणियों मे विभक्त किया। भारत की कतिपय बड़ी-

बड़ी रियासतों में भी यह आन्दोलन फैला। उन्होंने भी अपने-अपने अधिनियम बनाए जैसे—हैदराबाद, इंदौर, ट्रावन्कोर, काश्मीर, ग्वालियर इत्यादि। आन्दोलन प्रसारित हो रहा था। कई सहकारी-समितियों ने दूसरे प्रान्तों में अपनी शाखाएं खोलीं, जिसके लिए आवश्यकता अनुभव की गई कि उन प्रान्तीय शाखाओं पर नियंत्रण रखा जा सके, जो प्रान्त के बाहर स्थित हों। अतः १९४२ में मल्टी युनिट सहकारी-अधिनियम पास किया गया। इसके अधीन जिस प्रान्त में सहकारी-समिति की शाखा हो, और सहकारी-समिति दूसरे प्रान्त में रजिस्टर हुई हो तो जिस प्रान्त में शाखा होगी वहां भी रजिस्टर समझी जायगी और उस प्रान्त का रजिस्ट्रार उस शाखा पर वैसा ही नियंत्रण रख सकेगा जैसा कि वह मूल समिति पर, जहां वह रजिस्ट्री हुई हो, रखता है। मैक्लेगन कमेटी की रिपोर्ट के पश्चात जो महत्वपूर्ण प्रभाव सहकारी-आन्दोलन पर पड़ा, वह रिजर्व बैंक आफ इण्डिया का था, जो सन् १९३५ में बना। अतः १९१५ से लेकर १९३५ तक का जो युग भारतीय सहकारिता का रहा, उसे मैक्लेगन कमेटी का युग कहा जा सकता है। इस काल में आन्दोलन की विभिन्न दशाओं में जो प्रगति हुई उसका संक्षिप्त विवरण यहां पर दिया जाना उपयुक्त ही मालूम देता है।

प्राथमिक ऋण-सम्बन्धी समितियां

इस काल में आन्दोलन मुख्यतः ऋण तथा साख के पहलू पर ही जोर देता रहा। ऋण-संबंधी सहकारी-समितियों ने समाज की पर्याप्त सेवाएं की हैं। जहां तक ब्याज भी दरों का प्रश्न है, इनमें सहकारी-आन्दोलन के कारण ही भारी कमी हो पाई है। पंजाब में इस प्रकार की सहकारी-समितियों ने अपेक्षया अधिक उन्नति की और आन्दोलन की शक्ति इस बात से स्पष्ट दिखाई देती है कि इस प्रान्त के साहूकारों के विरुद्ध अल्प आयवाले वर्गों का मानो एक मोर्चा खड़ा हो गया। वे अपने-आपको शक्तिशाली समझने लगे। सन् १९१४ के महायुद्ध ने कृषकों को फौज में भरती द्वारा पर्याप्त

आय प्राप्त कराई और बचत का आन्दोलन आगे बढ़ा। किसानों ने अपनी भूमि रहन से छुड़ाई। इस आन्दोलन की प्रगति का चित्र निम्न तालिका से स्पष्ट होता है :

वर्ष	सदस्य-संख्या	भाग द्वारा पूंजी
१९११-१९१५	५,४८,२५३	८८,८७०००)
१९१५-१९२०	११,२८,९६१	२,५१,९७०००)
१९२१-१९२५	२१,५४,६०७	५२,५६,०००)
१९२६-१९३०	३६,८८,८४१	९,९४,१७०००)
१९३१-१९३५	४३,२२,२६९	१२,९१,४२०००)

यह पहले लिखा जा चुका है कि इस युग में सहकारिता प्रधानतया ऋण-साख से ही संबंधित रही। आमतौर पर एक ग्राम के लिए एक समिति बनाई जाती। इनका दायित्व अपरिमित होता था। ये ग्राम से अमानतें लेने का प्रयत्न करती; परन्तु अक्सर यह देखा गया कि ये समितिया अपनी पूजी जमा न कर सकीं; और पूजी के लिए बाहर के स्रोतों पर ही आश्रित रही। इस तरह ये संस्थाएं सामूहिक रूप से प्रगतिशील सजीव संस्थाओं का रूप धारण न कर सकी। परिणामस्वरूप ये समितियां क्रमशः "ए" क्लास से "बी" और फिर "सी" वर्ग तक पहुंचकर अन्ततोगत्वा दीवालिया हो गई। श्री लोबो प्रभु (Lobo Prabhu) का कथन है कि उत्तर-प्रदेश के गोरखपुर जिले में ठीक यही हुआ और १० वर्ष के पश्चात सहकारी समितिया दीवालिया होन लगी। इधर पंजाब के हुश्यिारपुर या गुरदासपुर के जिलों में, जहां यह आन्दोलन पुष्ट था, तथा लोगों की आर्थिक दशा अच्छी थी, यह प्रश्न उत्पन्न होने लगा कि भाग-विक्रय द्वारा जमा रुपया किस काम पर लगाया जाय? इसी विचार-विमर्श में रुपया लाभप्रद कामों मे न लगने के कारण आय कम होने लगी। इसमे संदेह नही कि सदस्य-संख्या तथा भाग द्वारा संग्रहीत तथा अन्य साधनो द्वारा प्राप्त धन की मात्रा

बढ़ने लगी; परन्तु आधारशिला पुष्ट न होने के कारण आन्दोलन में शिथिलता आने लगी। चूंकि नगर तथा ग्राम की सहकारिता अथवा यों कहें कि कृषि व साहूकार की सहकारिता का आपस में कोई संबंध न था, अतः भिन्न-भिन्न दिशाओं में चलती हुई वे अन्त में एक-दूसरे को निर्बल बनाने लगीं। उस काल में सारा ढांचा विशेष रूप से साख-ऋण-संबंधी ही रहा। इसलिए केंद्रीय-संस्थाओं का काम बैंकिंग तक ही सीमित रहता था। अन्य प्रकार की केंद्रीय सभाओं का रिवाज नहीं पड़ा था।

प्रारंभिक साख-समितियां अमानतें द्वारा भी धन-संग्रह का प्रबंध करती रहीं; परन्तु ग्रामीण जनता के निर्धन होने के कारण इस स्रोत से भी कोई उल्लेखनीय सफलता न मिली। बंबई-प्रांत को छोड़कर अन्य किसी भी प्रांत में सहकारी-समितियां पर्याप्त अमानतें संग्रह न कर पाईं। इस काल के अमानतों के आंकड़े ४२वें पृष्ठ की तालिका में दिये गए हैं।

सहकारी-समितियों को सुदृढ़ बनाने के लिए ही रक्षित कोष (Reserve Fund) का प्रावधान रखा गया था; परन्तु आमतौर पर यह कोष कारोबार में ही व्यय होता रहा और पृथक जमा नहीं रहा।

बहूद्देश्यी तथा उपभोक्ता सहकारी-भंडार प्रारंभिक समितियों की कोटि में आते हैं। इनकी भी इस युग में कुछ प्रगति हुई; परन्तु ऐसी नहीं जिसका ब्यौरा देने की आवश्यकता हो। इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि मद्रास में इस प्रकार की सहकारिता प्रगतिशील रही है।

केंद्रीय बैंक तथा संघ—सन् १९१२ के सहकारी-अधिनियम के बनने के बाद ही केंद्रीय सहकारी-संस्थाओं के निर्माण का प्रबंध संभव हो सका है। उक्त अधिनियम बनने के शीघ्र बाद ही उत्तर-प्रदेश, बंगाल तथा मध्य प्रदेश में केंद्रीय बैंक बने। सन् १९१५-२० तक इनकी औसत संख्या ३०१ थी, जो १९२०-२५ तक ५०० हो गई। इन बैंकों से सहकारिता के आन्दोलन को बड़ी सहायता मिली। इस तरह आन्दोलन प्रगति करता रहा, जिसकी प्रगति का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

वर्ष	कुल समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	चालू धन
१९१५-२०	२८,४७७	११,२८,९६१	१५,१८,४७,०००
१९२१-२५	५७,७०७	२१,५४,६०७	३६,३६,२६,०००
१९२६-३०	९३,९३६	३६,८८,८४१	७४,८९,१३,०००
१९३१-३५	१,०५,७१४	४३,२२,२६९	९४,६१,०६,०००

इसी काल में भूमि-बंधक बैंक (Land Mortgage Bank) भी बने और उन्नति करते रहे । परन्तु इस प्रकार के बैंकों को अधिक सफलता मद्रास में ही प्राप्त हुई। बंबई में भी यह अच्छे चले; लेकिन पंजाब में असफल रहे। परीक्षण, निरीक्षण तथा लेखा-परीक्षण के कार्यों का भार १९१२ के एक्ट के अधीन विभाग पर ही रहा; परन्तु अप्रैल सन् १९३१ में आल इंडिया कोआपरेटिव कान्फ्रेंस का अधिवेशन हैदराबाद में हुआ और इसमें विचार किया गया कि समस्त भारत में लेखा-परीक्षण की एक ही पद्धति चलाई जाय । तदनुसार एक योजना भी तैयार की गई, जिसके अंतर्गत समितियों का निरीक्षण-कार्य केंद्रीय बैंक तथा बैंकिंग संघों को, और लेखा-परीक्षण का कार्य प्रांतीय सहकारी-संस्थाओं को, सौंपने का प्रस्ताव हुआ । यह भी योजना थी कि हर जिला में एक आडिट-युनिट बनाई जाय, जो अपने ऑडीटरों द्वारा प्रारंभिक सहकारी-समितियों का लेखा-परीक्षण कराए । सब कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना तथा इसके लिए रजिस्ट्रार से लाइसेंस प्राप्त करना आवश्यक रखा गया । लेखा-परीक्षण के लिए फीस भी नियत की गई । इसके फलस्वरूप कुछ प्रांतों में संघ बने और फीस का क्रम भी जारी हुआ; परन्तु राजकीय प्रबंध भी साथ-साथ चलता रहा । यह ठीक है कि इस तरह का प्रस्तावित क्रम पूर्णतया सफल नहीं हो सका ।

रिजर्व बैंक ऑव इंडिया

सन् १९३४ में रिजर्व बैंक आव इंडिया का अधिनियम बना और इस बैंक ने चिर-वांछित आवश्यकताओं को पूरा किया । सन् १९३५ में रिजर्व

वर्ष	सदस्यों की अमानतें	असदस्यों की	सहकारी संस्थाओं द्वारा	सरकार द्वारा
१९११-१५	८८,२८,०००	१,४१,९८,०००	१,९३,४२,०००	१०,८७,०००
१९१६-२०	९६,३५,०००	४,७०,२५,०००	५,५१,००,०००	२५,५८,०००
१९२१-२५	२,५४,४५,०००	१०,९६,२२,०००	१३,७९,८६,०००	६७,६९,०००
१९२५-३०	५,०३,४२,०००	२३,५९,६८,०००	२७,५५,३१,०००	१,६३,३४,०००
१९३१-३५	७,४६,७६,०००	२०,१२,०६,०००	३,०५,८०,०००	१,५३,५१,०००

बैंक ने अपना कृषि-विभाग खोला । इस विभाग के निम्नलिखित ध्येय निश्चित किये गए—

(क) कृषि-संबंधी ऋण तथा साख-विषयक सब समस्याओं के अध्ययन-हेतु जानकार कर्मचारी-समुदाय रखना, जिसकी सेवाएं केंद्रीय सरकार को भी विचार-विमर्श के निमित्त उपलब्ध हो सकें।

(ख) बैंक के कृषि-संबंधी ऋण-विषयक कार्यों को संगठित करना तथा प्रांतीय सहकारी बैंकों एवं अन्य बैंकों के ऐसे संगठनों के साथ, जो कृषि-ऋण संबंधी कार्य करते हों, संबंध स्थापित करना ।

(ग) कृषि-ऋण तथा साख के संबंध में रिजर्व बैंक आफ इंडिया की नीति का स्पष्टीकरण करना ।

इस प्रकार सहकारी-संस्थाओं के संचालन एवं प्रणयन का भार रिजर्व बैंक पर आ पड़ा । यह कार्य बड़ी सतर्कता तथा विचारशीलता के बिना संपन्न होना संभव नहीं था । प्रांतीय तथा जिला बैंकों की आर्थिक स्थिति व अवशेष पत्रों की जांच-पड़ताल करना भी जरूरी था । सन् १९३६ में रिजर्व बैंक के कृषि-विभाग ने सहकारिता के आन्दोलन के संबंध में एक रिपोर्ट तैयार करके भारत सरकार को भेजी । इस रिपोर्ट की सिफारशें इस प्रकार थीं :

(१) जहां ऋण इतना बढ़ गया हो कि कर्जदार की सामर्थ्य से बाहर हो, उसे घटा देना चाहिए ।

(२) भविष्य में एक सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए जिससे अधिक ऋण न दिया जाय ।

(३) सदस्य किसान को एक से अधिक स्थानों से ऋण न लेने दिया जाय ।

(४) सहकारी गोदाम और विक्रय-समितियों की स्थापना की जाय ।

(५) प्रांतीय बैंक को कृषि-साख का नियंत्रण करना चाहिए ।

(६) अधिक समय के लिए दिये जाने वाले ऋण, अल्पकालीन ऋणों

से पृथक् किये जाने चाहिएं।

(७) सहकारी केंद्रीय बैंकों को अपने कर्ज की रकम घटा देनी चाहिए कि सदस्य खेती के लाभ में से उसे २० वर्षों में चुका सकें। जो रकम वसूल न हो सके, उसे बट्टे खाते में डाल देना चाहिए।

(८) ऋण तथा साख की सहकारी-समितियों को ब्याज के दर कुछ बढ़ाने चाहिएं जिससे वे अधिक रक्षित कोष इकट्ठा कर सकें।

(९) बैंकों की प्रबंधकारिणी समिति में बैंकिंग के अनुभव वाले व्यक्ति अधिक होने चाहिएं।

(१०) आवश्यकता से अधिक ऋण लेने और सदस्यों से ऋण की राशि वसूल करने में ढील को दूर करने के लिए अमानतदारों (depositors) के प्रतिनिधि भी केंद्रीय तथा प्रांतीय सहकारी बैंकों के संचालक-मंडल में रहने चाहिएं।

(१२) यदि बैल आदि खरीदने के लिए एक वर्ष से अधिक समय के लिए ऋण लेना ही पड़े तो भी वह दो वर्ष से अधिक समय के लिए नहीं होना चाहिए। इस प्रकार के ऋण को वार्षिक ऋण से पृथक् रखना चाहिए। ऋण व साख-संबंधी इस प्रकार के ऋण अधिक नहीं होने चाहिएं।

(१२) कृषकों को जो ऋण दिए जायं, वह आवश्यकतानुसार किस्तों में देने चाहिएं। सारी राशि एक मुश्त नहीं देनी चाहिए।

(१३) यदि ऋण की अदायगी ठीक समय पर न हो तो उसे तुरन्त वसूल करने का प्रयत्न किया जाय। यदि ऐसा न हो सके तो समिति तोड़ दी जाय। यदि फसल नष्ट हो गई हो तो उसे अपवाद समझा जाय।

(१४) फसल नष्ट होने की दशा में अदायगी के समय को आगे बढ़ाया जावे।

(१५) प्रारंभिक समिति का, जो आन्दोलन की आधारशिला है, पुनः संगठन होना चाहिए और उसका कार्य-क्षेत्र केवल ऋण न होकर कृषक का समस्त जीवन होना चाहिए।

(१६) यह समितियाँ छोटे बैंकिंग संघों से संबद्ध कर दी जायं।

(१७) प्रांतीय बैंक को आन्दोलन की देख-भाल और उसका नेतृत्व करना चाहिए।

रिजर्व बैंक के कृषि-विभाग के संगठन से सहकारिता के आन्दोलन को वैज्ञानिक आधार मिला, और अनुसंधान का कार्य भी इसी विभाग के अधीन संगठित हुआ। इसके फलस्वरूप आन्दोलन में विधिवत प्रगति तथा उन्नति हुई है। रिजर्व बैंक ने सहकारिता-संबंधी इतना ज्ञान प्रसारित किया है कि अब देश के हर भाग के आन्दोलन का व्यक्त तथा स्पष्ट परिचय सुलभ हो गया है। ग्रामीण ऋण-अनुसंधान तथा हर राज्य की सहकारिता-संबंधी खोज भी रिजर्व बैंक द्वारा हुई है। इन सब सेवाओं के बावजूद सहकारी कार्यकर्त्ताओं का विचार है कि काफी समय तक रिजर्व बैंक की विचार-धारा संकीर्ण रही है। जो वित्तीय सहायता रिजर्व बैंक ने कृषि-ऋण के संबंध में दी है, कई आलोचक उसे समुद्र में से बून्द के समान मानते हैं। वे भूल जाते हैं कि उक्त बैंक नियंत्रणकारी अधिनियम के अधीन तथा उसकी मर्यादाओं के भीतर ही काम कर सकता था। जबतक वह अधिनियम संशोधित न होता तबतक बैंक के लिए अधिक सहायता देना संभव नहीं था। हर काम के लिए समय लगता है। अतः रिजर्व बैंक को भी कार्यानुसंधान करने,योजना बनाने तथा अधिनियम के संशोधन में समय लगा। मिलने वाली सहायता को कोई भी अल्प नहीं कह सकता। यह बैंक हर वर्ष सहकारिता के आंकड़े (Statistical review) छापता है, जिसमें पूर्व के प्रकाशन पर पर्याप्त उन्नति की गई है। बैंक के अन्य प्रकाशन भी बड़े लाभदायक हैं जैसे सहकारिता के ३० वर्ष (Thirty years of Co-operation)। सहकारिता प्रशिक्षण-क्षेत्र में इसने सराहनीय कार्य किये हैं और आज तो रिजर्व बैंक के अधीन कितने ही प्रशिक्षण-केंद्र चल रहे हैं। भारतीय सहकारिता में जैसे पहला युग प्रवेश-काल है, दूसरा संवर्धन-काल है, इसी प्रकार तीसरे को हम संगठन तथा अनुसंधान-काल कह सकते हैं। इस काल में आन्दोलन की प्रगति का संक्षिप्त विवरण आगामी पृष्ठ की तालिका से प्रकट हो जाता है:—

वर्ष	सभा संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन	चालू धन
१९३६-३७	९२,१२५	४१,५५,०१९	११,१६,०७,३८८	८९,७१,२६,४७२
१९३७-३८	९४,२४४	४३,५०,१८१	११,५५,८१,७५६	९२,९०,५६,३८३
१९३८-३९	१,०४,३३६	४८,२९,१५५	११,९४,००,९९७	९६,२४,७३,७६४
१९३९-४०	१,१८,७०५	५५,३४,०५१	१२,२७,८५,६८६	९६,८८,६३,७६१
१९४०-४१	१,२४,३३७	५८,५१,४८८	१२,५५,५८,६८६	९८,६७,७६,८७९
१९४१-४२	१,२६,६९२	६१,४७,५५७	२३,३६,९८,६५२	१,१५,७९,५३,९०८
१९४२-४३	१,२६,६८०	६२,६२,५६१	१३,४५,४०,६५४	१,०९,२३,७३,१२६
१९४३-४४	१,३०,५५०	६७,७३,०६१	१६,७०,५३,७४०	१,१६,३६,९५,२००
१९४४-४५	१,३३,३६६	७२,५०,८७८	१६,९२,५६,५९३	१,२९,४२,२३,८८८
१९४५-४६	१,४०,१०१	७८,१६,६५८	१६,०२,९८,६३३	१,६७,४४,७६,८७९
१९४६-४७	१,००,५०३	६६,६१,६६४	१७,७७,७६,०००	१,६१,२४,७९,६२५

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सन् १९४७ से पूर्व देश परतंत्र था, और उस समय भी भारत दो तरह की शासन-पद्धतियों में बंटा था। एक भाग में सीधा अंग्रेजी शासन और दूसरे में रजवाड़ों का शासन चालू था। ऊपर के आंकड़े तो अंग्रेजी भारत के हैं और देसी रियासतों के आंकड़ों के बिना देश की सहकारिता का चित्र अपूर्ण रहेगा। अतः उस भाग की सहकारिता के आंकड़े पृष्ठ ४८ की तालिका में दिये जा रहे हैं।

अंग्रेजी भारत के आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि सभा-संख्या आदि में सन् १९४६-४७ में कमी हुई है; परन्तु ऐसी बात नहीं। सन् १९४७ के मई से जून तक देश की विषम परिस्थिति में आंकड़ों का संग्रह संभव नहीं था। और फिर अनुपात से ग्रामीण ऋण सहकारी-समितियां पाकिस्तान में भी चली गईं।

रिजर्व बैंक व्यक्तियों या प्रारंभिक समितियों को सीधा ऋण नहीं देता, वरन् इसका ऋण प्रांतीय अथवा केंद्रीय बैंकों द्वारा प्राप्त होता है। परन्तु भारत के ग्रामीण ऋण की समस्या सहकारिता के ३०-४० वर्षों में भी सुलझ न पाई। विशेषज्ञों का कहना है कि इतने प्रयत्नों के बावजूद भी कृषकों के ऋण की आवश्यकता २०% तक ही सरकारी तथा सहकारी स्रोतों द्वारा पूरी हो सकी है। शेष ८०% की आवश्यकता निजी स्रोतों द्वारा ही पूरी होती रही है। इसमें संदेह नहीं कि ब्याज कम हुआ। ब्याज द्वारा मूलधन की वृद्धि की सीमाएं निर्धारित हुईं और ऋण की आवश्यकताएं भी निश्चित हुईं। फिर निजी स्रोतों द्वारा ऋण-प्राप्ति में इतनी कमी नहीं हो सकी जिससे यह कहा जा सकता कि सहकारिता कभी भी भविष्य में ग्रामीण कृषक की ऋण की पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्त्ति कर सकेगी। इन सब बातों की ओर रिजर्व बैंक तथा अन्य अनुसंधान-कर्त्ताओं ने शासन तथा आन्दोलन का ध्यान आकृष्ट किया। इस काल में रजिस्ट्रारों के सम्मेलन होते रहे। वे भी प्रस्ताव भेजते रहे। रजिस्ट्रारों का सबसे प्रसिद्ध सम्मेलन सन् १९४४ में हुआ। बड़े महत्वपूर्ण

वर्ष	सभा संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन	चालू धन
१९३६-३७	१६,६५५	७,१८,९८९	२,०५,४३,२१६	९,६७,४६,५५८
१९३७-३८	१६,८९५	७,२३,०७२	२,०७,०९,४१५	१०,११,१७,१११
१९३८-३९	१७,८६०	७,७३,४१८	२,०७,७४,६०६	१०,३१,०१,३७५
१९३९-४०	१८,१७४	७,८३,२९५	२,०८,०१,७९३	१०,२१,४५,४५२
१९४०-४१	१८,२७३	८,०२,४०९	२,०९,६८,६२३	१०,८४,५७,६३४
१९४१-४२	१८,७३२	८,३०,५८३	२,१३,६१,५३९	११,९५,७३,१६२
१९४२-४३	१९,४८०	८,९२,७८४	२,२५,६८,८०१	११,९०,८७,५७५
१९४३-४४	२५,१५६	११,६७,२९४	२,८३,४०,७८६	१५,९६,४९,७८५
१९४४-४५	२६,२८९	१३,६२,७७५	३,२८,०७,१०७	१८,२१,१७,५००
१९४५-४६	३२,०४५	१६,०४,८३३	३,८०,९६,८९३	१९,६६,६६,५०३
१९४६-४७	३८,६३३	२४,३९,२४३	४,५३,५६,०००	२३,५९,२७,१९८

निश्चय हुए। सहकारिता के आन्दोलन को पुष्ट करने के लिए उन्होंने शासन का ध्यान निर्माण-काल में आर्थिक सहायता की ओर आकृष्ट किया। इसी सम्मेलन के प्रस्ताव पर सहकारी योजना-समिति (Co-operative Planning Committee) का निर्माण हुआ, जिसका ब्यौरेवार विवरण अगले अध्याय में दिया जायगा। इस युग मे सहकारिता के आन्दोलन के लिए सरकारी सहायता पर बहुत जोर दिया गया।

सरकारी सहायता के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत है। श्री फे का मत है कि सरकारी सहायता जब एक बार प्रविष्ट होती है तो फिर उससे मुक्त होकर स्वावलम्बी आन्दोलन की स्थापना कठिन हो जाती है। अतः सरकारी सहायता बडी सतर्कता से दी जानी चाहिए। यह सहायता स्वावलंबन को तो पुष्ट करेगी ही; परन्तु सदस्यता की वृद्धि को भी प्रभावित करे। आन्दोलन की सफलता के लिए आवश्यक है कि जनता की मनोवैज्ञानिक धारणाओं में परिवर्तन हो, उनकी विचारधारा बदले और उनका जीवन-क्रम सहकारी-भावनाओ पर अवलम्बित हो।

कई विद्वानों का मत है कि यह सहायता ऋण के रूप में ही दी जानी चाहिए ताकि समितियां उसकी वापसी की चिन्ता से स्वावलम्बन के भावों को पुष्ट करे। परन्तु भारत के सहकारी-विभाग के अधिकारियों का विचार है कि भारतीय जनता के निर्धन होने के कारण आन्दोलन के लिए निर्माण-काल मे सरकारी सहायता की बड़ी आवश्यकता है और अभी तक इस धारणा को ही भारत में पुष्टि प्राप्त हो रही है।

प्रान्तीय बैंक

इसी युग में सहकारी आन्दोलन में प्रांतीय सहकारी बैकों का प्रचार बढ़ा। १९४६-४७ में इनकी संख्या २३ हो गई, जो स्वतन्त्रता के पश्चात सन १९४७-४८ में घट कर ११ रह गई क्योंकि कुछ बैक पाकिस्तान में चले गए। इसी काल में सहकारिता का विकास बहुमुखी हो गया। आन्दोलन ऋण तथा साख-पक्ष में तो आगे बढ़ा ही; और कई दिशाओं में भी आगे

बढ़ता गया। बहूद्देश्यी सहकारिता (Multipurpose Co-operation) भी अपनाई जाने लगी। दूध संबंधी, ग्रामोद्योग को संगठित करने वाली आदि-आदि सहकारी समितियां बनने लगीं।

इन सब दिशाओं में आन्दोलन की प्रगति का पूर्ण विवरण इस अध्याय का विषय नहीं, क्योंकि इसके लिए प्रत्येक दिशा के विवरण को स्पष्ट करने के लिए पृथक् अध्याय की आवश्यकता होगी, जो इस पुस्तक में ही अन्यत्र दिया जायगा। यहां केवल सन् १९४७ के सहकारिता के आन्दोलन के आंकड़े देने ही पर्याप्त होंगे, जिनसे यह पता चल सकेगा कि जब देश स्वतन्त्र हुआ उस समय आन्दोलन की क्या दशा थी ?

आगे दी हुई तालिकाओं के आंकड़े सन् १९४६-४७ की रिपोर्ट से लिये गए हैं।

तालिका नं० १

नाम प्रांत व राज्य	समितियों की किस्में	समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	भागधन	चालूधन
१. मद्रास					
	केन्द्रीय	३००	२९,९९१	१,१२,७७,९९४	२४,४६,८३,८००
	कृषि	१३,६३४	१२,८९,११५	२,६८,२८,१७१	१३,८७,९९,९४६
	अन्य	४,७२२	१२,२८,८९४	४,२१,३५,६९८	१८,१८,८९,९००
२. बम्बई					
	केन्द्रीय	१४८	३१,१५९	६७,८१,२२५	१७,३२,२१,९२४
	कृषि	६,४३३	६,०२,३४६	१,२४,३२,३९६	६,२७,७०,९४१
	अन्य	२,४१४	६,८७,६४९	४,६२,९५,२२०	२०,६२,००,४०६
३. पश्चिमी-बंगाल	केन्द्रीय	४१	११,२८०	३७,००,६७०	५,४२,२९,०५५
	कृषि	११,४८२	२,९७,५७८	२०,५४,७०९	१,२५,३४,४७३
	अन्य	१,८०३	३,७९,२१४	१,४७,७८,६३१	७,३९,४१,२१७
४. बिहार					
	केन्द्रीय	४४	७,०२३	१०,१३,३३६	१,४३,११,३८७
	कृषि	९,६८८	२,४५,४५२	७,८५,४८०	७०,५५,०८१
	अन्य	४४७	५६,२४९	२४,०५,५३६	७८,५७,४४६

नाम प्रांत व राज्य	समितियों की किस्में	समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	भागधन	चालू धन
५. उड़ीसा					
	केन्द्रीय	१६	६,५९३	९,६१,२७८	८०,०२,५७७
	कृषि	२,७८२	१,२०,९८६	७,१०,९४०	६१,५९,३७२
	अन्य	६१३	६५,०४२	३,८३,४७२	८०,८३,०३२
६. संयुक्त प्रांत	केन्द्रीय	६९	२२,६६७	४८,०६,२१८	२,९३,२०,४५४
	कृषि	२७,५४८	९,७१,००५	६२,२७,४९६	२,६०,०१,५६१
	अन्य	१,६४४	१,८७,७४७	५२,२२,४७५	१,३५,६३,६९२
७. पूर्वी पंजाब					
	केन्द्रीय	७०	१२,८१७	१९,२६,५३०	६,२१,५४,५२६
	कृषि	११,६६४	६,०१,७९०	८८,८५,६८१	३,५१,६२,६१९
	अन्य	३,३२८	१,४१,०७७	४१,६०,८२३	९३,९९,२२४
८. मध्य प्रांत और बरार	केन्द्रीय	४२	४९,०८८	२२,७९,८७४	४,१८,०९,७३२
	कृषि	६,१४४	१,२१,१३९	१३,३६,७४८	१,४८,५३,१८५
	अन्य	१,७५९	१,४७,६३९	३४,०३,०४४	८५,५०,६५३

९. आसाम					
	केन्द्रीय	१६	१,३१९	२,०६,१६०	१२,३५,०६३
	कृषि	७३७	१८,९६३	१,२१,७७३	९,७७,३४९
	अन्य	१,१९१	१,१६,००१	३२,३४,०३१	८१,१३,९७६
१०. कुर्ग					
	केन्द्रीय	१४	१,२५४	१,०७,६२६	११,०९,४७०
	कृषि	२६७	२७,०९१	४,०४,१९३	१९,०८,६४०
	अन्य	६०	१४,९७४	३,२४,५७०	१२,८६,८३२
११. अजमेर-मेरवाड़ा					
	केन्द्रीय	१५	१,८५५	१,९४,८७५	३०,४३,९६३
	कृषि	६१०	१४,४३६	२,३८,३२०	११,५१,८६७
	अन्य	२७३	१३,५२०	४,५२,२०५	२८,५५,३१९
१२. दिल्ली					
	केन्द्रीय	९	४६२	८४,४००	२६,३७,५५७
	कृषि	३०४	१२,४९९	८८,६७९	२,४८,१००
	अन्य	१९६	१८,८५१	९,४३,१९०	३१,८८,९८६
जोड़	केन्द्रीय	७७६	१,७५,५०८	३,३३,९३,१८०	६३,५७,५९,५०८
	कृषि	९१,२९३	४३,२२,४००	६,०१,१४,५८६	३०,७६,२३,१४१
	अन्य	१८,४५०	३१,५६,८५७	१२,६४,३८,८९५	५२,५५,३०,६८३

नाम प्रांत व राज्य	समितियों की किस्में	समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	भागधन	चालू धन
१. हैदराबाद					
	केन्द्रीय	४८	११,४५१	२०,९३,८५७	२,३२,८३,४७७
	कृषि	१८,३१०	१४,०३,३१८	१,३५,८०,६८८	३,०४,८३,५५५
	अन्य	६८६	९३,१५०	३७,९३,९२२	१,५०,८८,८४१
२. मैसूर					
	केन्द्रीय	५	२,०१६	७,१५,९८७	७१,९५,४२२
	कृषि	१,८४६	१,१५,३४६	२२,८४,३९१	१,०६,००,३३०
	अन्य	६७२	१,३२,०४५	५७,१८,४१९	२,३५,०७,१७३
३. बड़ौदा					
	केन्द्रीय	१२	२,५१५	४,२३,१७३	३७,१०,५३५
	कृषि	१,१७५	५९,६३३	१५,१६,६४५	८९,९४,८१०
	अन्य	४४१	९८,५९२	२६,८५,९३४	१,३५,९८,५२०
४. भोपाल					
	केन्द्रीय	१६	८००	६६,७३४	७,३१,८२३
	कृषि	२७३	८,२६८	३३,६५५	४,६१,५३१
	अन्य				

५. ग्वालियर					
	केन्द्रीय	१५	६,९९७	८,००,२१६	१,१४,४९,८५०
	कृषि	३,९७३	७६,६८४	९,११,५७८	८५,८२,३९७
	अन्य	२४३	८,८७७	३,०९,१९९	११,३४,९१०
६. इन्दौर					
	केन्द्रीय	६	२,८७८	२,११,८४२	३१,९७,३६७
	कृषि	१,०२५	२४,३३४	६,२६६	२८,७९,४१८
	अन्य	८३	२३,४६५	९,११,९३०	४६,१७,३५८
७. काश्मीर					
	केन्द्रीय	९	२,६६५	३,९४,८४१	३६,७२,२२६
	कृषि	२,१४०	७४,५८८	११,८२,७६३	३९,४९,००८
	अन्य	७७९	२७,८९७	४,२२,४८९	२६,७९,३२४
८. ट्रावन्कोर					
	केन्द्रीय	२८	४,७७५	१,३०,४७०	२१,४५,३२५
	कृषि	१,१६३	१,३६,३८१	१८,७९,९१९	४०,०३,३३२
	अन्य	६५०	९३,६३८	१९,२२,६६८	५७,७८,७८३
९. कोचीन					
	केन्द्रीय	२	३,१८२	१,७०,४८६	३७,१८,९५६
	कृषि	१८९	१८,८११	१,९९,८२७	११,७०,०६७
	अन्य	३०९	५४,९४६	८,७६,५८७	३३,३९,८२८

नाम प्रांत व राज्य	समितियो की किस्मे	समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	भागधन	चालूधन
१० अन्य रियासते	केन्द्रीय	३०	८,६७८	१०,३८,७१२	१,६९,९२,८९६
	कृषि	४,४९२	१,२६,८७२	२१,७०,५२९	१,२३,१४,७२७
	अन्य	६२८	५३,८३३	२१,४८,६१३	१,२४,०५,४१६
जोड	केन्द्रीय	१७१	४५,९५७	६०,४६,३१८	७,६०,९७,८७७
	कृषि	३४,५८६	२०,४४,२३५	२,३७,६६,२६१	८,३४,३९,१७५
	अन्य	४,४९२	५,८६,४४३	१,८७,८९,७७१	८,२३,५०,१६३

तालिका नं० २

कृषि-ऋण समितियां

नाम प्रांत व राज्य	समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	अपना धन	चालू धन
			लाख रु. में	लाख रु. में
१. मद्रास	११,३७५	७,५८,९१३	२०२.२८	५९६.००
२. बम्बई	५,२६६	२,६५,९४१	२८०.७१	३६१.६९
३. पश्चिमी बंगाल	९,४८९	२,१२,२१९	५३.८७	१०१.१८
४. बिहार	५,६७८	१,३९,८७६	२२.६४	५१.२०
५. उड़ीसा	२,७१५	९९,१०७	१६.६१	४६.१३
६. संयुक्त प्रांत	५,००७	१,१६,३६२	६३.४७	८७.४४
७. पूर्वी पंजाब	८,४२१	३,१३,६८६	१८३.११	३५६.९५
८. मध्य प्रांत व बरार	५,९०९	७९,४८०	२२.९९	८४.५३
९. आसाम	७१६	१८,१८०	५.३८	८.७७

नाम प्रांत व राज्य	समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	अपना धन	चालू धन
१०. अजमेर-मेरवाड़	५४६	१२,२०५	८.६१	१०.६५
१. कुर्ग	२६७	२५,७५२	८.५५	१७. २
१२. दिल्ली	१८४	४,२५५	३.२२	उपलब्ध नहीं
१३. मैसूर	१,६८०	८५,९०८	३६.४७	५४.३८
१४. बड़ौदा	९२६	२८,०९३	१५.२०	४३.२७
१५. हैदराबाद	१६,५७३	७,१९,१४७	१११.६०	१५०.२४
१६. भोपाल	२७३	८,२४३	२.११	४.७०
१७. मध्य भारत	४,८०६	९२,२९०	४४.५५	१००.३१
१८. काश्मीर	२,६४२	४८,८७२	३३.१२	४१.७४
१९. ट्रावंकोर	१,१३३	१,२८,५५१	२५.५६	३२.३९
२०. कोचीन	१६५	१८,३०९	४.७६	९.८८
जोड़	८३,७७१	३१,७५,३८९	१०४२.८१	२१५८.४७

तालिका नं० ३

अन्य ऋण समितियां

नाम प्रांत व राज्य	समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	अपना धन	चालू धन
१. मद्रास	१,२७८	३,६९,८२४	१९५.७३	७१४.१५
२. बम्बई	९२८	४,४७,२४९	४०२.४९	१४८७.४५
३. पश्चिमी बंगाल	३४२	२,३०,८६४	२०७.३३	६७७.०९
४. बिहार	१२३	२८,०९१	२९.५७	७२.२५
५. उड़ीसा	५३	१६,१३७	६.००	२४.००
६. संयुक्त प्रांत	६२४	८४,५८०	४५.३२	९४.४२
७. पूर्वी पंजाब	६१९	२७,६८०	२२.५५	५४.३३
८. मध्य प्रांत व बरार	२१६	२६,०२९	११.०३	२६.७९
९. आसाम	१४४	८,५४३	५.४७	१६.५७
१०. अजमेर-मेरवाड़	१०६	५,४६३	४.१८	१५.५०

नाम प्रांत व राज्य	समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	अपना धन	चालू धन
११. कुर्ग	२१	३,६५०	२.५६	६.९१
१२. दिल्ली	१००	१०,२३५	अप्राप्य	२७.४३
१३. मैसूर	४२१	८८,२३१	७७.२८	२०२.३७
१४. बड़ौदा	२००	६१,०९९	२०.१८	१०४.५८
१५. हैदराबाद	४१४	५६,८५७	५२.५६	१३४.७२
१६. मध्य भारत	१४९	२०.४३२	१२.२६	४२.५५
१७. काश्मीर	३८८	७,७२४	४.५२	८.६५
१८. ट्रावंकोर	१५६	४४,२२०	१४.८५	३१.९७
१९. कोचीन	८८	१८,०२६	८.२४	२०.९३
जोड़	६,३७०	१५,५४,९३४	११२२.१२	३७६२.६६

तालिका नं० ४

बहूद्देश्यी समितियां

नाम प्रांत व राज्य	समिति-संख्या	सदस्य-संख्या	अपना धन	चालू धन
१. बम्बई	४१४	३५,०८२	उ-नहीं	३९.८०
२. पश्चिमी बंगाल	४८	१४,०००	—	१.१८
३. बिहार	१४०	७,४१३	—	०.५५
४. उड़ीसा	९	६,३६३	—	१.७४
५. संयुक्त प्रांत	८,०३२	२,१४,९४६	—	११०.२६
६. पूर्वी पंजाब	२	५१	—	०.१०
७. मध्य प्रात व वरार	५२५	५०,८७७	—	१७.००
८. अजमेर-मेरवाड़ा	१०३	२,७४७	—	३.२४
९. ट्रावंकोर	९०	१३,०३३	—	४.५६
१०. बड़ोदा	२८७	उपलब्ध नही	—	उ-नही
जोड़	९,६५०	३,४४,५१२	—	१७८.४३

तालिका नं० ५

दुग्ध सम्बन्धी सभाएं

नाम प्रांत व राज्य	समिति संख्या	सदस्य-संख्या	अपना धन	चालू धन
१. मद्रास	२६९	२७,७२३	१.१७	अनुपलब्ध
२. बम्बई	२६	अनु०	अनु०	"
३. पश्चिमी बंगाल	१५१	११,०००	०.१४	"
४. उत्तर-प्रदेश	७५	१,७०६	०.१५	"
५. केन्द्रीय प्रांत व बरार	११	२९३	—	"
जोड़	५३२	४०,७२२	१.४६	—

तालिका नं० ६

औद्योगिक समितियां

नाम प्रान्त	सभा संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन	चालू धन
१. मद्रास (वीवर सभाएं)	६५९	१०८,६२५	३८.७५	१०७.२१
अन्य औद्योगिक)	३५२	२३,३६४	१.७९	अनु०
२. बम्बई (वीवर सभाएं)	१७४	१७,८५८	११.६६	१८.०६
(अन्य)	१२४	२२,४५०	—	३३.८६
३. पश्चिमी बंगाल (वीवर सभाएं)	५९५	४१,०००	२.६५	७.६१
(अन्य)	५२	३,२१०	०.०७	०.२७
४. बिहार (वीवर)	३३	७९४	०.२३	०.५६
(अन्य)	—	—	—	—
५. उड़ीसा (वीवर)	१२४	९,५७२	०.४३	२.१५
(अन्य)	३७	४,१५४	०.५२	२.८४
६. उत्तर-प्रदेश (वीवर)	३९४	४०,८२६	६.७३	१३.३६
(अन्य)	३३	१,१७४	०.५०	२.५४
७. पूर्वी पंजाब (वीवर)	१६२	३,०११	०.१८	२.५८
(अन्य)	५९	९१९	०.०५	०.९६

नाम प्रान्त	सभा संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन	चालू धन
८. केन्द्रीय प्रांत (वीवर) व बरार	२०७	३७,०४५	९.००	१२.००
(अन्य)	५२	४,११७	१.००	१.००
९. मैसूर (वीवर)	४६	२,३३४	०.५०	१.५०
(अन्य)	८	४९४	—	—
१०. बड़ोदा (वीवर)	६७	१,२७६	०.१६	०.६७
(अन्य)	२२	३४३	०.००५	०.२५
११. मध्यभारत (वीवर)	१०७	२,५४८	०.१८	१.०१
(अन्य)	—	—	—	—
१२. काश्मीर (वीवर)	३५	१,२१५	०.३१	०.७६
(अन्य)	१	६३	(रु. ३४)	(रु. ५८)
१३. ट्रावन्कोर (वीवर)	९६	४,८६१	०.९२	१.२५
(अन्य)	९४	३,२४८	०.५०	१.१४
१४. कोचीन (वीवर)	१६	१,८३९	अनु०	०.७९
(अन्य)	४०	४,४२४	—	१.०४
योग	३,४४९	३४०,७६४	७६.१८	२२२.३१

तालिका नं० ७

उपभोक्ता भंडार

नाम प्रान्त	सभा संख्या	सदस्य संख्या	अपना धन	क्रय	विक्रय
१. मद्रास	१,६८८	५,३३,२६०	९९.६७	१,३१८.५५	१,८६३.३६
२. बम्बई	५१५	१,३३,४००	अनु०	५२२.१३	६००.११
३. पश्चिमी बंगाल	२२१	३९,०००	४.१५	५३.२८	६०.८०
४. बिहार	१२	७,९८२	२.००	२८.६३	३५.२१
५. उड़ीसा	१७६	१८,९५३	२.३८	३६.३१	८०.०२
६. उत्तर-प्रदेश	२२२	२४,२९९	५.०८	अनु०	३७.५१
७. पूर्वी पंजाब	१८	३,९८७	०.८७	१४.५१	१३.४३
८. मध्य प्रांत व बरार	४२५	३६,४०२	६.००	५५.००	६५.००
९. आसाम	१,००९	१,०६,७५४	२९.३०	५००.२०	५००.३०
१०. अजमेर मारवाड़	२६	४,७९६	०.६५	५.४१	५.२३

नाम प्रान्त	सभा संख्या	सदस्य सख्या	अपना धन	ऋण	विक्रय
११. कुर्ग	२१	५,८७७	०.३४	३.७४	३.२३
१२. दिल्ली	३९	७,८२४	अनु०	१७.०२	१६.८३
१३. मैसूर	१५२	३१,६१४	८.६०	५३.५०	५४.००
१४. बड़ोदा	१९०	३४,८४७	११.२७	१०८.६०	१२२.२०
१५. मध्य भारत	५२	३,३९५	०.७५	८.८२	५.८९
१६. काशमीर	४०	११,५३२	१.४५	१६.५४	१६.२७
१७. ट्रावन्कोर	२६१	३४,७६३	४.५४	९२.९४	८६.६३
१८. कोचीन	५१	६,१८६	१.०९	१३.३७	१३.८५
योग	५,१२६	१०,८२,८७१	१८०.१६	३३१३.९३	३५५३.९५

तालिका नं० ८

भूमि-बन्धक बैंक

नाम प्रान्त	सभा संख्या	सदस्य संख्या	अपना धन	चालू धन
१. मद्रास (केन्द्रीय)	१	६२५	३१.७८	४२१.१३
(प्राइमरी)	१२०	८९,७६८	२९.७१	२९४.५१
२. बम्बई (केन्द्रीय)	१	६७९	५.५४	४२.३८
(प्राइमरी)	१५	१८,१३२	५.०६	३४.९५
३. उड़ीसा (केन्द्रीय)	१	२,०५५	०.९३	५.२०
४. मैसूर (केन्द्रीय)	१	३१४	४.६४	३३.८३
(प्राइमरी)	७७	१६,५९३	३.८२	३४.६३
५. कोचीन (केन्द्रीय)	१	२,८२०	१.७२	१३.६४
६. पश्चिमी बंगाल (प्राइमरी)	२	१,०३८	०.३९	४.३८
७. उत्तर प्रदेश (प्राइमरी)	६	१,८०३	०.६६	२.४३

नाम प्रान्त	सभा संख्या	सदस्य संख्या	अपना धन	चालू धन
८. मध्य प्रांत (प्राइमरी) व बरार	७१	८,१९७	२.१७	१७.२४
९. आसाम (प्राइमरी)	७	२२०	०.७८	०.७६
१०. अजमेर मेरवाड़ (प्राइमरी)	१७	१,२७०	०.१९	०.७२
११. बड़ोदा (प्राइमरी)	७	२,३१७	३.३७	१०.२५
१२. अन्य प्रदेश (प्राइमरी)	११	३८७	०.१८	०.८२
योग	२७३	१,४६,७८८	१०.७७	२१३.१०

तालिका नं० ९

केन्द्रीय बैंक

नाम राज्य	संख्या	सदस्य व्यक्ति	सदस्य सभाएं	चालू पूंजी रु. लाखों में	अपनी पूंजी रु. लाखों में
मदरास	३०	४११६	१३,३८६	१५८.१९	१३८४.२६
बम्बई	१४	१३,९५१	४,०४९	८३.२८	७४६.८०
पश्चिमी बंगाल	३९	१,६३०	९.५९२	४५.२८	१९२.१८
बिहार	४३	१,४३७	५,५१४	८.३६	३४.३१
उड़ीसा	१५	८१२	८११	१५.४१	७०.९५
उत्तर प्रदेश	६७	६,२८७	१३,४४७	५६.९२	१८८.५८
पूर्वी पंजाब	७०	१,८७६	१०,८५२	८४.२५	६३८.९८
मध्य-प्रदेश बरार	३५	२६,७०३	६,१७५	५३.४७	१९५.३८
आसाम	१५	४६९	७७३	४.०१	९.८४

नाम राज्य	संख्या	सदस्य व्यक्ति	सदस्य सभाएं	चालू पूंजी रु. लाखों में	अपनी पूंजी रु. लाखों में
अजमेर मेरवाड़	६	२२३	६९८	५.२६	११.१९
दिल्ली	१	८०	३७६	४.९७	२५.०१
मैसूर	३	७८	८९	०.३६	०.३८
बड़ौदा	१०	१२९८	८४०	१२.१२	२९.४६
हैदराबाद	४६	११९०	४०९२	३७ ३९	१०१.६२
भूपाल	१४	५३४	२३६	५.०१	३.३४
मध्य भारत	२१	४६४०	४८९८	२६.२०	१३९.०२
काश्मीर	१५	६२५	३११८	१४ ४८	३८ ५६
ट्रावन्कोर	१	२१२९	१०३४	२ २१	२१.१७
कोचीन	१	—	—	१ ५३	२२.४३
जोड़	४४६	६८,९५८	८३,४९९	६१७.७०	३८५७.३४

तालिका नं० १०

केन्द्रीय बैंक

नाम राज्य	संख्या	सदस्य व्यक्ति	सदस्य सभाएं	अपनी पूंजी रु. लाखों में	चालू पूंजी रु. लाखों में
मदरास	१	१६७	३२	५३.७१	५०६.१३
बम्बई	१	२,५३८	२,०२४	४५.९०	६५०.९९
पश्चिमी बंगाल	१	——	२०१	८१.४१	३३९.१०
बिहार	१	४३	८५	११.२४	११०.०९
संयुक्त प्रान्त	१	२०४	४०३	१२.१३	६२.५३
मध्य प्रान्त व बरार	१	१,२०२	२,२०२	१६.४७	२२५.६३
आसाम	१	२३	५४	१.५३	२.५१
अजमेर मेरवाड़	१	४४९	३३४	४.४०	१८.३२
कुर्ग	१	५८२	३३६	२.२६	१२.६४
मैसूर	१	१३७	१,३२२	७.८१	४५.१०
हैदराबाद	१०	९२८	२१३	१६.७२	१३४.५२
जोड़:	११	६,२७३	८,१०६	२५३.५८	२,१९७.५८

२

स्वतंत्र भारत में सहकारिता

सहकारी योजना-समिति

(Co-operative Planning Committee)

भारत में सहकारिता की गतिविधि आकने तथा उसके भावी प्रचार में नव-जीवन लाने के लिए समय-समय पर विशेषज्ञो के सम्मेलन होते रहे हैं। निकल्सन-रिपोर्ट और मैक्लेगन रिपोर्ट दोनो ऐसे ही विशेषज्ञो के विचार-विनिमय का फल है, और आज भी सहकारी-जगत् मे इनका इतना मान है कि इन्हे सहकारिता की बाइबिल के नाम से पुकारा जाता है। समय बीतने के साथ-साथ ही सहकारिता का क्षेत्र भी विस्तृत होता जा रहा है। नए-नए कार्यों में सहकारिता के सिद्धान्तो के प्रयोग होने लगे है। रिजर्व बैंक ने १९३५ के पश्चात इस ओर विशेष ध्यान दिया है और आर्थिक संसार में सहकारिता ने एक ऐसा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया कि इस आन्दोलन से संबंधित अधिकारियों को नई नीति निर्धारण करने की चिन्ता हुई; क्योंकि एक ओर अगर आन्दोलन विस्तृत होता हुआ नई प्रतिज्ञाओं के साथ भारत में आगे बढ़ रहा था और इसने विवश तथा निर्धन मानव के हृदय मे नई आशा का दीप जगा दिया था, तो दूसरी ओर राज्य की नीति इस प्रकार संकीर्ण थी, जिससे इस जन-आन्दोलन को पूर्ण रूप से पुष्टि नही मिलती थी। यही कारण था कि सहकारी-विभाग के अधिकारी एक विषम परिस्थिति में थे। इस समस्या को हल करने के लिए सन् १९४४ मे भारत के विभिन्न प्रातों के रजिस्ट्रारों का एक सम्मेलन हुआ, और इस सम्मेलन ने सरकार से कुछ सिफारिशे की। इन सिफारिशों के फलस्वरूप ही सहकारी योजना-समिति (Planning Committee) का निर्माण

हुआ। इस कमेटी को सुरय्या कमेटी के नाम से भी पुकारा जाता है। कमेटी का काम यह था कि वह सरकार के समक्ष सहकारिता के संबंध मे निश्चित नीति-निर्धारण के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करे। कमेटी ने सहकारिता के प्रश्न पर मौलिक ढंग से विचार किया और अपनी रिपोर्ट सन् १९४५ में प्रस्तुत की; परन्तु इस पर अमल तब हुआ जब देश स्वतन्त्र हो चुका था और पाकिस्तान पृथक देश बन चुका था। इस रिपोर्ट में स्वतन्त्रता संग्राम द्वारा उत्पन्न स्वतन्त्र विचार-धारा की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

इसी कमेटी की सिफारिशों का फल है कि आन्दोलन ने एक व्यापक रूप धारण किया, संविधान निर्माताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और पंचवर्षीय योजना मे इसे सर्वोपरि विकास-साधन स्वीकार किया गया।

आन्दोलन के प्रचार में जो प्रारंभिक कठिनाइयां आईं, उन पर विचार करते हुए इस कमेटी ने लिखा :—

प्रारम्भिक

सहकारिता के विकास के लिए उन बातों की ओर संकेत करना आवश्यक है, जिनके बिना सहकारिता अपने उच्च आदर्श को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकेगी। इन पूर्व आवश्यकताओं को राजनैतिक, आर्थिक तथा शिक्षा-संबंधी तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(१) पहली आवश्यकता यह है कि देश का शासन उत्तरदायित्व-संपन्न लोकतंत्र-पद्धति पर अवलम्बित हो क्योंकि ऐसा शासन ही व्यक्तिगत प्रेरणा तथा जिम्मेदारी की भावनाओं की सृष्टि कर सकता है।

(२) योजना की सफलता के लिए आवश्यक है कि खुले व्यापार की पद्धति का खात्मा किया जाय। क्योंकि इसी पद्धति के अनुसरण ने भारत की जनता के जीवन-स्तर को ऊंचा उठने से रोके रखा है। इसका अर्थ यह होता है कि शासन शिक्षा, यातायात, स्वास्थ्य, कृषि तथा उद्योग के संबंध

में बढी हुई मात्रा में उत्तरदायित्व सम्हाले । देश के विकास के निमित्त आज के व्यक्तिगत तथा निजी प्रेरणा के आर्थिक क्षेत्रों को सिकुड़ना पडेगा, अन्यथा खतरे की सभावना रहती है । इसके विपरीत सहकारी-सगठन में उत्तरदायित्वो को साझा बना कर सकट की सीमा नियत कर दी जाती है। परन्तु इसकी भी एक हद होती है जिसको लाघने पर सहकारी-सस्था में भी खतरे को टाला नही जा सकता । इसीलिए शासन के हस्तक्षेप की आवश्यकता पडती है ताकि आर्थिक व्यवस्था के स्वाभाविक खतरो को इतना कम किया जा सके कि वे सहन किये जा सके ।

यो तो हर उत्पादन-क्षेत्र में सदैव खतरा रहता है, परन्तु कृषि को यह खतरा कुछ अधिक लगा रहता है, क्योकि एक तो मानसून की वर्षा सदिग्ध होती है, दूसरे उपज न्यूनाधिक होती रहती है, तीसरे हमारे कृषि-क्षेत्र छोटे-छोटे है, इससे भी कुछ अन्तर पड जाता है । कृषि की उपज के मूल्यो में न्यूनाधिकता भी सारे देश की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डालती है, क्योकि देश की लगभग ७० प्रतिशत जनता खेती-बाडी पर निर्भर है । औद्योगिक उत्पादन के मूल्यों पर भी खेती की उपज के मूल्यो का प्रभाव इसीलिए पडता है कि कच्चा माल तथा अनेको की आजीविका इनसे प्रभावित होती है । जिस समय कृषि-सबधी उत्पादन के मूल्यो में मन्दी आ जाती है उस समय कृषक की दशा भी विशेष रूप से दयनीय हो जाती है। अत. सरकार के लिए आवश्यक है कि वह ऐसी नीति निर्धारित करे जिससे कृषि-विषयक उत्पादन का मूल्य ऐसी सीमाओ के अन्दर रहे जो उत्पादक तथा उपभोक्ता के लिए सह्य हो। ऐसा करने से ही आने वाले वर्षों मे कृषि सबधी उपज के भावो की मन्दी को रोका जा सकता है, और इस प्रकार समस्त आर्थिक जीवन मे समता लाई जा सकती है, तथा उत्पादन मे होनेवाले खतरो को काबू मे रखे जानेवाले अनुपात तक सीमित किया जा सकता है । फल-स्वरूप सहकारिता-आन्दोलन को अन्य व्यवसायो के मुकाबले सफल बनाया जा सकता है ।

सहकारिता की उन्नति की गति उसी अनुपात मे होगी जिस अनुपात

से देश में शिक्षा का प्रसार होगा। सहकारिता के लक्ष्यों को निर्धारित करते समय शिक्षा-संबंधी विकास की गतिविधि को ध्यान में रखना होगा, जिनका जिक्र सन् १९४८ के केंद्रीय शिक्षा मंत्रणा-परिषद ने अपनी रिपोर्ट में किया था। सहकारिता के विकास की गति उसी अनुपात से तीव्र हो सकती है जिस अनुपात से उसकी रुकावटें हटाई जायं।

इसी रिपोर्ट में देश के सार्वजनिक हितों को सामने रखते हुए यह सिफारिश की गई है कि जिस इलाके की दो-तिहाई जनता सहकारी सभा की सदस्य हो और सहकारी सभा दो-तहाई बहुमत से कोई प्रस्ताव पास करे तो उसका पालन समस्त जनता पर बाधित किया जाना चाहिए और इसी आशय का संशोधन सहकारी विधान में लाया जाना उचित है। इस रिपोर्ट में एक मतभेद-सूचक नोट श्री हीरालाल काजी ने लिखा है, जिसका तात्पर्य यह था कि कमेटी को चाहिए कि रिपोर्ट में सरकार से सिफारिश करे कि सहकारिता आन्दोलन पर से शासकीय नियंत्रण को क्रमशः कम किया जाय। परन्तु इस विषय में शेष सदस्यों का कहना यह था कि ऐसा करने का अभी उचित समय नहीं है। कमेटी की रिपोर्ट का सारांश उसके अन्त में दिया गया है। यहां पर उसका हिन्दी-रूपांतर इस अभिप्राय से दिया जा रहा है, क्योंकि स्वतन्त्र भारत की सहकारिता का यही आधार है।

सहकारिता और आयोजन

(१) सहकारिता के विकास के लिए लोकतंत्रात्मक शासन-पद्धति का होना आवश्यक है। यह भी जरूरी है कि शासन खुले व्यापार की पद्धति की समाप्ति कर दे तथा शिक्षा, यातायात, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग और आर्थिक विकास के क्षेत्रों में अधिक उत्तरदायित्व सम्भाले।

(२) सहकारिता की संस्थाओं में स्वेच्छा के सिद्धांत का पालन ठीक है परन्तु जहां देश के विकास-कार्यों का संबंध हो और जिस क्षेत्र के दो-तिहाई परिवार सहकारी संस्था के सदस्य हों और वे दो-तहाई बहुमत से

कोई निश्चय करें तो वह निश्चय उस क्षेत्र के सब लोगों पर लागू करने के लिए विधान में आवश्यक संशोधन किया जाना चाहिए और विकास से संबंध रखनेवाले सब विभागों को सहकारिता के पक्ष में प्रचार करके जनता को अधिक-से-अधिक मात्रा में सहकारिता के परिवार में शामिल करना चाहिए।

(३) सहकारी सभा लोकतंत्री विकास-पद्धति के प्रसार के लिए एक अति उत्तम साधन है और इसके ही संगठन से बड़े पैमाने पर उद्योग के कार्य आयोजित किये जा सकते हैं।

(४) सहकारी योजना में शासन से हर प्रकार की मंत्रणा तथा सहायता मिलनी चाहिए। परन्तु इसकी सफलता, इसके गैर-सरकारी अंग की निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास तथा कार्यशीलता पर ही निर्भर है। अतः इसे इस ढंग से संगठित करना चाहिए जिससे सरकारी तथा गैरसरकारी अंगों का पारस्परिक विचार-विनिमय स्वाभाविक ढंग से निरन्तर चलता रहे।

(५)-युद्धोपरान्त विकास-कार्य में सैनिकों की सहायता के लिए उचित प्रावधान इसमें होना चाहिए।

(६) हर प्रांत में सहकारी-विभाग का एक प्रचार उपविभाग होना चाहिए।

(७) भारत में सहकारिता की असफलता के कारण ये हैं :—

राज्य में खुले व्यापार की नीति, लोगों की अशिक्षा, व्यक्ति की सब मांगों को पूर्ण करने में आन्दोलन की असफलता, सभाओं का छोटा होना और अवैतनिक कार्य-पद्धति में अधिक विश्वास, जिसके कारण आन्दोलन में अयोग्यता आई।

कृषि-सम्बन्धी उत्पादन

(१) सब राज्यों के लिए इस बात के जानने की जरूरत है कि उन्हें ऐसी कितनी कृषि-योग्य भूमि मिल सकती है जिसपर काश्त नहीं की जा रही है, और जिसपर उपज बढ़ाने के निमित्त काश्त की जाय।

(२) विकसित तथा उन्नत कृषि उपकरणों के बारे में सहकारी सभाओं को इस्तेमाल किया जाय।

(३) कृषि-विभाग खोज करके बढ़िया बीजों का वितरण सहकारी सभाओं द्वारा कराये। इसी तरह रासायनिक खाद का वितरण और वृक्षारोपण का कार्य भी सहकारी-सभाओं द्वारा ही होना चाहिए। इसके लिए वन-विभाग को योजनाएं बनानी चाहिएं। सिचाई का कार्य तो राज्य के जिम्मे रहना ही चाहिए; परन्तु इनकी छोटी-छोटी शाखाएं, जल-वितरण तथा सिंचाई के अन्य कार्य सहकारी सभाओं को सौंपे जा सकते हैं। इसी प्रकार अन्य सिचाई योजनाएं तथा कुहलों के निर्माण का कार्य सहकारी सभाओं के हवाले किया जा सकता है। पंथों तथा मार्गों के निर्माण में भी सहकारी-सभाएं उपयोगी कार्य कर सकती हैं। संक्षेप में कृषि तथा अन्य विकास कार्यों पर सरकार को सहकारी-सभाओं का पर्याप्त सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

(४) ऋण-संबंधी प्रश्न कृषक जीवन के एक भाग से संबंधित है। अतः प्रारंभिक सहकारी सभा को इसके लिए सब उपयोगी कार्य करने चाहिएं। एक ऐसी सभा के कम-से-कम ५० सदस्य होने चाहिएं और कार्य-क्षेत्र इतना होना चाहिए कि पर्याप्त व्यवसाय प्राप्त करके कार्य का भली प्रकार नियंत्रण तथा निरीक्षण कर सके।

(५) जहां असीम उत्तरदायित्व सफल सिद्ध हुआ हो, वहां प्रारंभिक सभा के उत्तरदायित्व में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होगी। कई राज्यों में असीम उत्तरदायित्व ने कई अच्छे परिणाम नहीं दिये। अतः अब विचार-प्रवाह सीमित उत्तरदायित्व के हक में है। और इसके लिए नवसंगठित सभाओं का उत्तरदायित्व हिस्सेदारों के भागों तथा उनके निश्चित गुणन तक सीमित होना चाहिए। परन्तु यह विचार रखा जाय कि हिस्सों की बिक्री से सभा-कार्य के लिए पर्याप्त धन मिल जाय। हां, जहां असीम उत्तरदायित्व सफल रहा हो उसे चालू रखना चाहिए और वस्तुस्थिति के अनुसार रजिस्ट्रार को इसका निर्णय करना चाहिए।

(६) प्रयत्न यह होना चाहिए कि १० वर्ष में ५० प्रतिशत ग्राम तथा ३० प्रतिशत ग्रामीण जनता नवसंगठित सहकारी सभाओं में शामिल हो जाय। इसके लिए दो पंचवर्षीय योजनाएं बना लेनी चाहिएं और लक्ष्य-प्राप्ति के लिए सहकारिता के परिवार में प्रतिवर्ष ८ से १० लाख तक नए व्यक्ति शामिल होने चाहिएं। इस अवधि में २१,६०० नई सभाएं बनाई जानी चाहिएं और हर सहकारी सभा के प्रबंध संबंधी व्यय में सरकार ५० प्रतिशत तक आर्थिक सहायता दे।

(७) ५० सभाओं के समूह के लिए दो सुपरवाइजर तथा एक आडिटर एवं १०० सभाओं के लिए एक इंस्पैक्टर और एक हजार सभाओं के लिए एक सहायक रजिस्ट्रार तथा माल-विभाग के लिए एक डिप्टी रजिस्ट्रार होना चाहिए।

(८) सहकारी-सभाओं को क्षेत्र-एकीकरण का वह काम हाथ में लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जो राज्यों में स्वीकृत किये गए अधि-नियमों के अधीन किया जाना हो।

(९) भूमि तथा कृषि-संबंधी उत्पादन के बढ़ाने का एकमात्र हल तो विस्तृत मात्रा में उत्पादन ही है। उत्पादन की इन विधियों में सामूहिक कृषि, शासन द्वारा कृषि, कम्पनी द्वारा कृषि तथा सहकारी-खेती की पद्धतियां हैं। पहली विधि भारत की वर्तमान परिस्थिति में संभव नहीं। दूसरी विधि मात्र उदाहरणार्थ ही होनी चाहिए। तीसरी में पूंजीवाद के सब दोष रहते हैं। अतः चौथी विधि, जो व्यक्तिगत स्वामित्व का संरक्षण करती हुई विस्तृत मात्रा में उत्पादन के सब लाभ देती है, अपनाने योग्य है।

(१०) सहकारी खेती की सभा नीचे लिखे चार प्रकारों में से कोई भी हो सकती है:—

(१) सामूहिक खेती
(२) साझी काश्तकारी
(३) परिमार्जित खेती
(४) संयुक्त खेती

इनमें से किसी भी प्रकार की सभा जारी करने से पूर्व वहां की परिस्थिति को जानना आवश्यक होगा । सरकार जहां कहीं भी नई भूमि को काश्त के योग्य बनाए वहां भूतपूर्व फौजियों तथा भूमिहीन मजदूरों की सहकारी सभा बनाई जाय, जो सामूहिक खेती करें । परिमार्जित खेती का सबसे अधिक प्रचार करना उचित होगा । संयुक्त सहकारी खेती का प्रचार समय लेगा । अतः, इस प्रकार की सहकारी सभाओं का प्रचार शनैः-शनैः होना चाहिए ।

(११) सहकारी खेती के प्रोत्साहन के लिए जिला केंद्रीय बैंक के द्वारा कम तथा अधिक समय के ऋण का प्रबंध करना आवश्यक होगा । लम्बे अर्से का ऋण अधिक अच्छा रहेगा । खेती में जब मशीनों का प्रयोग करना हो तो राज्य की सहकारी समिति का परामर्श अवश्य लिया जाय ।

(१२) फलोत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए भी सहकारिता के अन्तर्गत बागीचे लगाने, फलोत्पादन करने वाले कृषकों को आर्थिक व विक्रय संबंधी सहायता तथा प्रशिक्षण आदि देने चाहिएं । फलों का संरक्षण तथा उनको डिब्बों में बन्द करके विक्रय करने का कार्य भी सहकारी सभा द्वारा किया जाय तो कृषकों का अपेक्षाकृत अधिक लाभ होगा ।

(१३) जहां नगरों के चारों ओर एक हरी घास की पेटी बनाने की योजना हो वहां भी यह कार्य फौजियों की सहकारी-सभा द्वारा किया जा सकता है । इसी प्रकार वन-रक्षा का कार्य है । वनों में वृक्षारोपण तथा वनों की उपज का विक्रय भी सहकारी-संस्थाओं द्वारा अधिक सफल और लाभदायक सिद्ध हो सकता है । यही सहकारी संस्थाएं धरती-फटाव (erosion) का बचाव भी कर सकती हैं । सहकारी विभाग के रजिस्ट्रार और वन-विभाग के चीफ कंसरवेटर को मिलकर इस प्रकार की योजनाएं बनानी चाहिएं ।

पशु-रक्षा तथा मछली-पालन

(१) अच्छे वंश के पशुओं का चुनाव तथा विकास करने के लिए

सरकार को पशु-क्षेत्र खोलने चाहिए और घटिया किस्म के सांडों को कानून द्वारा नपुंसक बना देना चाहिए । इसके पश्चात अच्छी नस्ल के सांड रखे जाने चाहिएं और पशुवंश की उन्नति के लिए इनकी सेवाओं का प्रयोग लोकप्रिय बनाना चाहिए । अच्छी नस्ल के पशुओं का प्रचार बढ़ाने के लिए सरकार को चाहिए कि सहकारी संस्थाओं द्वारा लोगों को इसके लिए ऋण दे ।

(२) पशुओं तथा भेड़-बकरियों के लिए सूखा तथा हरा घास प्राप्त कराने के लिए सरकार को चाहिए कि प्रारंभिक सहकारी-सभाओं को ग्रामों के ऐसे निकटवर्ती स्थान दे, जहां ग्रामवासी पशुओं के लिए पर्याप्त घास पैदा करके जमा कर सकें, और वन-विभाग को चाहिए कि वह उन्हें बिना मूल्य के घास काटने दे ।

(३) दुग्धोत्पादन तथा दूध की बिक्री के कार्य में भी तभी उन्नति तथा लाभ हो सकेगा जब यह कार्य सहकारी-सिद्धांतों पर आयोजित होगा। हर नगर के दस मील की परिधि तक के ग्वालों को सहकारी सभा में संगठित किया जा सकता है । दुग्ध-विक्रय के साथ-साथ उन्हें अच्छी नस्ल के पशु खरीदने के लिए ऋण देने का भी प्रबंध किया जा सकता है। परन्तु दूध संबंधी सहकारी सभाओं को सफल बनाने के लिए यह अवाश्यक होगा कि प्राथमिक भवन-निर्माण तथा पशुओं की खरीद का सारा, और पांच वर्ष तक मशीनों तथा यातायात का आधा खर्च सरकार दे । साथ ही इनके लिए स्थान भी बिना मूल्य मिलने चाहिएं। पहाड़ी प्रांतों के गड़रियों के संरक्षण तथा उन्नति के लिए उन्हें सहकारी सभाओं में संगठित करके एक पूर्व-निश्चित योजनाधीन सहायता देनी चाहिए । गोशाला के साथ-साथ मुर्गी-पालन का कार्य भी आयोजित किया जा सकता है।

(४) मछली पालन तथा इनके पकड़ने का कार्य ऐसा है, जो यदि वैज्ञानिक ढंग से आयोजित किया जाय तो बहुत लाभप्रद साबित हो सकता है। यह कार्य भी मछुओं की सहकारी सभा बना कर संपन्न हो सकता है।

खेती की उपज की बिक्री

(१) आजकल की मंडियों में प्रायः स्वतन्त्रता तथा न्याय को आधार मान कर मुकाबला नही होता। भोला-भाला अशिक्षित किसान व्यापारियों की कूट-नीतिपूर्ण चालों में आकर अपनी मेहनत का पूरा पैसा तक नहीं पाता। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि सहकारी व्यापार द्वारा कृषक के माल को बेचा जाय।

(२) अतः हमें सहकारी व्यापार का कार्य बड़ी सतर्कता से करना होगा। यह कहना तो कठिन है कि अमुक सभा में अमुक कार्य सफल होगा; परन्तु यह आवश्यक है कि क्रय-विक्रय का कार्य करनेवाली सभा का प्रबंधक ईमानदार, विश्वासपात्र, योग्य तथा कार्यकुल हो, उसे व्यापार का पूरा ज्ञान हो और उसमें सदस्यों के विश्वास को पा सकने की क्षमता हो।

(३) प्रारंभ में वस्तुओं का व्यापार थोड़ी मात्रा में हाथ में लेना चाहिए। १० वर्ष में २५ प्रतिशत वस्तुओं का व्यापार सहकारी ढंग पर होना चाहिए। इसके लिए देश भर मे २,००० व्यापारिक सभाएँ तथा ११ राज्य सहकारी व्यापारिक-संघ कायम करने की आवश्यकता होगी। ऋण का कार्य भी इन्हीं सभाओं से संबद्ध किया जाना चाहिए। ऋण लेने वाले सदस्य से यह प्रतिज्ञा करानी चाहिए कि वह अपनी उपज सभा को ही देगा, पेशगी मूल्य अपने धन से अदा करेगा और व्यापारी संघ के द्वारा अपनी उपज का विक्रय करेगा। इस कार्य को संपन्न करने के लिए ग्रामों की एक सभा और दो हजार सभाओं का एक संघ होना चाहिए। इससे एक विशेष लाभ यह भी होगा कि विभागीकरण तथा स्तर-निश्चयीकरण आदि आसानी से हो सकेगा। हर सभा के पास अपना एक गोदाम भी आवश्यक है।

(४) प्रथम पांच वर्षों में इन सभाओं को राज्य-सरकार द्वारा आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए तथा प्रथम दो वर्ष तक सभाओं के कर्मचारीवर्ग के वेतन का ५० प्रतिशत और इसके बाद २५ प्रतिशत भाग राज्यसरकार को

आर्थिक सहायता के रूप में सभाओं को देना चाहिए।

(५) सहकारी व्यापारी-संघ के पास ३०,००० रुपये के करीब हिस्सों द्वारा एकत्रित किया हुआ मूल धन होना चाहिए और हर प्रारंभिक सदस्य को कम-से-कम १००) रुपया का हिस्सा उसमें लेना चाहिए। सदस्यों के धन को किसी प्रकार की खतरे की सभावना से बचाने के लिए इन सभाओं की कुछ जिम्मेदारी सरकार को अपने ऊपर लेनी चाहिए ताकि लोगों के मन में कुछ विश्वास जम सके।

(६) विक्रय की वस्तुओं के वर्गीकरण तथा स्तर-निश्चिय करने के हेतु एक कृषि-इंस्पैक्टर की सेवाएं प्राप्त करनी चाहिएं।

(७) सभा को इस बात का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए कि वह अपने सदस्यों की हर एक आवश्यकता को पूरा कर सके। यदि कोई सभा किसी जरूरी मांग का प्रबंध न कर सके तो उसके लिए एक पृथक् सभा बनाई जा सकती है। इसके लिए सरकार को पर्याप्त मात्रा में कुछ रकम ऋण-रूप में देनी चाहिए जो २० वर्ष की अवधि में किस्तों में वापस ली जाय।

(८) हर प्रांत में एक क्रय-विक्रय संबंधी सहकारी संघ होना चाहिए, जिसके पास सरकार के द्वारा निर्मित एक गोदाम होना चाहिए। साथ ही इस संघ को पहले दो वर्षों में ५० प्रतिशत तथा अन्य ३ वर्षों में २५ प्रतिशत आर्थिक सहायता सरकार की ओर से प्राप्त होनी चाहिए। इन संघों की सदस्यता प्रारंभिक सभाओं, केंद्रीय सभाओं, केंद्रीय बैंकों तथा अन्य व्यक्तियों के लिए खुली रहनी चाहिए।

(९) सारे देश के लिए एक व्यापारिक संघ होना चाहिए, जिसका प्रथम पांच वर्षों का कुल खर्च तो सरकार दे और इसके उपरान्त वह ५० प्रतिशत आर्थिक सहायता देती रहे।

(१०) इस कार्य के लिए सरकार को लाइसेंसों द्वारा नियंत्रित गोदामों की स्थापना का क्रम जारी करना चाहिए और इस बात का सारा कार्यभार सहकारी-सभाओं के हाथ में दिया जाना चाहिए।

(११) केंद्रीय सरकार, प्रांतीय सरकारों तथा रक्षा-विभाग के अधीन

जो गोदाम हैं, जो युद्धकाल में बनाए गए थे, अब वे खाली पड़े हैं, वे सहकारी व्यापारिक संस्थाओं को दे देने चाहिएं।

(१२) हर प्रांत की सरकार को चाहिए कि वह ऐसी सहकारी सभाओं के पर्यवेक्षण तथा उनको उचित परामर्श देने के लिए उपयुक्त तथा योग्य कर्मचारी नियुक्त करे।

कृषि-हेतु ऋण

(१) गाडगिल कमेटी ने कृषि-संबंधी ऋण की समस्या का जो विश्लेपण किया है, वह साधारणतया सर्वमान्य है। इस विश्लेषण में इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि सहकारी-आन्दोलन का प्रसार तथा संगठन ही ग्रामीण ऋण की समस्या का सर्वश्रेष्ठ हल होगा।

(२) ऋण संबंधी सहकारिता तभी सफल हो सकेगी जब वह ऋण के अतिरिक्त पूर्व प्रस्तावित अन्य कार्य भी अपने हाथ में लेगी।

(३) हर प्रांत तथा राज्य में शिखरीय बैंक (Apex Bank) स्थापित किये जायं जो कृपक को वह सब सुविधाएं दें, जिनकी गाडगिल कमेटी ने अपने प्रस्तावित कृषि-साख कारपोरेशन की स्थापना के सिलसिले में सिफारिश की है।

(४) प्रांतीय बैंकों के पुनस्संगठन में यह देखना होगा कि उनका हिस्सों द्वारा प्राप्त धन पर्याप्त हो और ऋण प्राप्त करने वाला व्यक्ति साढ़े ६ प्रतिशत ब्याज की दर पर ऋण प्राप्त कर सके।

छोटे-छोटे अन्य सहायक उद्योग

(१) आज के युग की यह सबसे बडी आवश्यकता है कि जन-संख्या की वृद्धि को रोका जाय तथा जन-संख्या के एक भाग को कृषि से हटा कर अन्य व्यवसायों की ओर अग्रसर किया जाय।

(२) इस कार्य को संपन्न करने के लिए भारत सरकार को चाहिए कि विभिन्न उद्योगों में नियोजित व्यक्तियों के आंकड़ों का संग्रह करे। इस बढ़ती हुई जनसंख्या में सबको काम देने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि छोटे-

छोटे ग्राम-उद्योगों में बेकारों को खपाया जाय।

(३) ग्रामोद्योग को पुष्ट करने के लिए रीजनल प्रोमोशनल एजेंसियों की स्थापना वांछनीय है और इसका कार्यक्षेत्र कार्यानुसार रखना उचित होगा।

(४) इस एजेंसी को वर्तमान उद्योगों के आंकड़े संग्रह करने होंगे और नये उद्योगों की नई दिशाएं ढूंढनी होंगी, उनके लिए मंडियों का प्रबंध करना होगा तथा कार्य करने वालों को आवश्यक उपकरण तथा कच्चा माल उपलब्ध कराना होगा।

(५) सहकारी बैंकों को कातने वाली मिल के हक में रोक-खाते (Cash-Credit) की सीमा खोलने में संरक्षण प्रदान करना चाहिए।

(६) कातने के लिए स्त्रियों की सहकारी-सभाएं खोलनी चाहिएं।

(७) ऐसी प्रत्येक संस्था को एक रीजिनल प्रोमोशनल अफसर रखना चाहिए जो सहकारी ढंग से सारे काम को चलाए तथा उसको प्रोत्साहन दे। ऐसे अफसर रजिस्ट्रार की सिफारिश पर रखे जाने चाहिएं।

(८) शनैः-शनैः औद्योगिक सहकारी सभाओं के संघ स्थापित करने चाहिएं, जिनमें प्रोमोशनल अफसर प्रथम वर्ग तथा डिप्टी प्रोमोशनल अफसर द्वितीय वर्ग नियत किये जाने चाहिएं। प्रत्येक अफसर के अधीन ६ क्षेत्रीय-कार्यकर्त्ता रखे जाने चाहिएं। इनको नियुक्त करने का अधिकार रजिस्ट्रार को होना चाहिए तथा इनका वेतन १२५-७-२००-(१०) २५० प्रस्तावित है।

(९) इन छोटे-छोटे उद्योगों पर सहकारी तथा उद्योग विभागों का साझा नियंत्रण उपयुक्त नहीं रहेगा। सहकारी विभाग के अधीन उद्योग के विशेषज्ञ रखने उपयुक्त होंगे। यदि रजिस्ट्रार के पास अधिक काम हो तो एक ग्राम-उद्योग रजिस्ट्रार भी रख लिया जाय।

(१०) प्रारंभिक दशा में इन सहकारी-सभाओं को राज्य द्वारा पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सहायता की आवश्यकता होगी। इसके लिए अलग से औद्योगिक बैंकों की स्थापना बेहतर होगी। ध्येय यह होना चाहिए

कि औद्योगिक संस्थाएं स्वावलम्बी बन जायं।

(११) ग्रामोंद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक होगा कि ग्रामोद्योग तथा बड़े उद्योगों के क्षेत्र निर्धारित कर दिये जायं और केंद्रीय तथा राज्य सरकारें अपनी आवश्यकता की वस्तुएं इनसे ही खरीदें।

श्रम तथा नागरिक निर्माण

(१) विदेशों के श्रम-सम्बन्धी सहकारी संगठनों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि :

(क) रेलों, सड़कों, नहरों तथा समतलीकरण आदि कार्य सहकारी ढंग से करने पर अधिक उपयुक्त और सफल हो सकते हैं।

(ख) श्रमिकों की सहकारी-सभाओं की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए।

(ग) श्रमिकों को मेट स्वयं चुनने चाहिएं।

(घ) सहकारी-सभाओं द्वारा काम होने पर श्रमिकों को काम तथा उजरत की एक तालिका तैयार कर लेनी चाहिए और श्रम की इकाई का मूल्य निर्धारित कर लेना चाहिए।

(ङ) उपकरणों आदि का प्रबन्ध कार्य लेनेवाले को करना चाहिए और रकम सुविधाजनक अंशों में वसूल की जानी चाहिए।

(च) ठेके ऐसे रेट पर देने चाहिएं जिनसे श्रमिकों को उचित मजदूरी मिल सके।

(छ) मजदूरी थोड़े-थोड़े समय बाद मिलती रहनी चाहिए।

(ज) ऐसे सहकारी संगठनों के हित-संरक्षण के लिए एक संघ का निर्माण भी होना चाहिए।

२. ऐसी सहकारी सभाओं को पूर्वतः वर्णित रीजनल प्रोमोशनल एजेंसियां संगठित करनी चाहिएं।

३. इटली तथा न्यूजीलैंड की प्रथानुसार छोटी-छोटी सहकारी-सभाएं संगठित करनी लाभप्रद होंगी। साधारणतया सदस्यों की संख्या थोड़ी होनी

चाहिए। सदस्य-संख्या अधिक होने पर आपत्ति तो कोई नहीं; परन्तु ऐसी अवस्था में उन्हें उपयुक्त संख्या की इकाइयों में विभक्त कर लेना चाहिए।

४. जनकार्य विभाग (P.W.D) तथा स्थानीय स्वायत्त शासन को चाहिए कि ऐसी श्रमिक सहकारी संस्थाओं को प्राथमिकता दी जाय।

५. इन संस्थाओं की प्रारंभिक घाटे की पूर्ति सरकार को करनी चाहिए तथा इन्हें सामान आदि सहकारी संस्थाओं से प्राप्त करना चाहिए।

उपभोक्ता सहकारिता

१. जहां पृथक् उपभोक्ता-स्टोर बनाये जा सकें वहां यह कार्य प्रारंभिक सहकारी सभाओं को करना चाहिए।

२. जहां प्रारंभिक ग्राम सभा यह कार्य संभाले वहां :

(१) ऋण-विभाग से स्टोर-विभाग पृथक् होना चाहिए।

(२) प्रारंभ में उन्हीं वस्तुओं का कार्य होना चाहिए, जिनकी दैनिक मांग अधिक हो।

(३) क्रय से पूर्व मांग का अन्दाजा लगा लेना चाहिए।

(४) साधारणतया बिक्री नकद अथवा व्यापार सम्बन्धी अमानतों के आधार पर होनी चाहिए। यदि उधार दिया ही जाय तो उसको सीमा से अधिक नहीं बढ़ने देना चाहिए।

(५) जो सदस्य नहीं भी हैं उनको भी सौदा दिया जाना चाहिए और उन्हें सौदा खरीदने की किसी प्रकार की मनाही नहीं होनी चाहिए।

(६) केवल सदस्यों में संरक्षण लाभ (Patronage dividend) बांटना चाहिए।

(७) सदस्यों में बचत की योजना चलाई जानी चाहिए।

(८) सदस्यों में प्रचार करना चाहिए कि वह क्रय-उपयोगिता के नियम को समझें अर्थात् रकम का पूर्ण लाभ प्राप्त करें।

३. प्रारम्भ में व्यय का ५० प्रतिशत सरकार को देना चाहिए।

४. बड़े-बड़े औद्योगिक सहकारी केंद्रों में कारखाने के मालिक

(Employer) की जमानत पर उपभोक्ता-स्टोरों में से उधार दिया जाना चाहिए। उन्हें चाहिए कि सभा को आवश्यक धन, मकान तथा सामान उपलब्ध करायें और कर्मचारी-वर्ग भी मुहय्या करें, त्योहारों पर अपने खर्च पर सौदा सस्ता करायें। ये स्टोर राशडेल के नमूने के हों और पहले पांच वर्ष में सरकार को पचास प्रतिशत तक चालू व्यय देना चाहिए।

५. ऐसे स्टोरों का एक प्रांतीय संघ बनाना उपयुक्त होगा और संघ को प्राइमरी, केन्द्रीय तथा प्रांतीय सहकारी संस्थाओं के कार्य का संगठन करना होगा। ज्यों-ज्यों कार्य बढ़ता जाय, अन्य नगरों में शाखाएं खोल देनी चाहिएं। जिस समय शाखा पुष्ट हो जाय तो उसे वहीं एक अर्ध-स्वतंत्र सहकारी सभा में तब्दील कर देना चाहिए। ऐसे सहकारी संघों का भी पहले पांच वर्ष में आधा खर्च सरकार को ही देना चाहिए।

६. जहां तक सम्भव हो, ऐसे स्टोरों को अपनी आवश्यकता की वस्तुएं उत्पादक सहकारी-सभाओं से खरीदनी चाहिएं।

७. दूध बेचने वाली सहकारी-सभाओं के लिए पैस्चुराइजेशन यंत्र तथा अन्य मशीनें सरकार को खरीद कर देनी चाहिएं।

८. सहकारी विभाग को चाहिए कि नागरिक भंडारों के आन्दोलनों को पुष्ट करने के लिए एक प्रथम वर्ग का अफसर नियुक्त करे। इसके अधीन प्रति दस भंडारों के लिए एक ऑडीटर (लेखा परीक्षक) रखा जाय और प्रति पांच भंडारों के लिए एक ऑडीटर और एक सहायक ऑडीटर हिसाब देखने के लिए नियुक्त करे।

नागरिक ऋण

(१) हर एक जिले में नागरिक बैंक आयोजित किये जाने चाहिएं, जो सहकारिता के सिद्धांतों पर बने हों।

(२) जो बैंक चालू अमानतें (Deposits on Current Accounts) रखें, उनका भाग धन २०,००० रु. से कम नहीं होना चाहिए।

शुद्ध लाभ का ३३.३ प्रतिशत लाभ सुरक्षित कोष में तब तक जाता रहना चाहिए जब तक वह भाग-धन के बराबर नहीं हो जाता और फिर शेष का ⅔ रिजर्व बैंक तथा सरकारी अमानतों में जाना चाहिए।

(३) नागरिक बैंकों को, जिन्हें रजिस्ट्रार अनुमोदित करे, वेतन तथा पेंशन जमा करने, प्राविडण्ट फण्ड जमा करने आदि के अधिकार मिलने चाहिएं और इनकी हुंडियां कर आदि की अदायगी में खजाने में स्वीकार की जानी चाहिए।

(४) नागरिक सहकारी बैंकों को संयुक्त पूंजी बैंकों में तब्दील करने की प्रार्थनाएं युक्ति-संगत नहीं।

(५) हर दफ्तर की, जिसके ५० से अधिक कर्मचारी हों, कर्मचारी सहकारी-सभाएं बन जानी चाहिएं।

(६) नागरिक न्याय-विधि के उस संशोधन द्वारा, जिससे वेतन की कुर्की न होनेवाली रकम २०) रु. से १००) रु. हो गई है, जो कठिनाइयां पैदा हुई है, उनको दूर करने के लिए सहकारी विधान में इस प्रकार का संशोधन होना चाहिए कि सहकारी सभाओं तथा बैंकों के ऋण में प्रतिज्ञा-पत्र होने पर वेतन की काट हो और मालिक को ऐसी काट करने का अधिकार मिले। बम्बई के अधिनियम में ऐसा किया गया है।

(७) जहां कम वेतन वाले कर्मचारियों की सहकारी सभा हो, वहां उस सभा के काम के लिए मालिक को कर्मचारी समुदाय (स्टाफ) देना चाहिए।

(८) हर कारखाने में ऋण तथा बचत-सम्बन्धी सहकारी सभाएं होनी चाहिएं। कारखाने के मालिक को चाहिए कि उनको स्टाफ दे।

(९) सहकारी-विभाग के रजिस्ट्रार को चाहिए कि श्रमाधिकारी के साथ पूर्ण सहयोग से काम करे।

गृह-निर्माण

गृह-निर्माण-योजना-निष्पादन में सहकारिता अच्छा साधन है, क्योंकि

यहां सदस्यों के हित की कामना सर्वप्रथम दृष्टि में रहती है। इसके लिए :

(१) नगर-योजनाओं में सहकारिता को विशेष स्थान प्राप्त होना चाहिए ताकि मध्यमवर्ग तथा अल्प आय वाले लोग इकट्ठे मिल कर गृह-निर्माण कर सकें।

(२) राज्य की सहकारी-समिति (Co-operative Council) को चाहिए कि जब अनुकूल समय हो तो राज्य के लिए एक केन्द्रीय गृह-निर्माण-सम्बन्धी सहकारी सभा बनाये, जिसका मुख्य कार्य यह हो कि वह लम्बे समय के लिए इन कामों के निमित्त ऋणों का प्रबन्ध कर सके।

(३) गृह-निर्माण-सम्बन्धी सभाओं को ऋण देने के लिए राज्य को आर्थिक सहायता देनी चाहिए या बीमा कम्पनियों से इसके लिए रुपया प्राप्त करना चाहिए अथवा भूमि-रहन बैंकों (Land Mortgage Banks) से इस चीज का प्रबन्ध करवाना चाहिए।

(४) जहां तक सम्भव हो इन्हें काम के लिए श्रम-सहकारी सभाओं का उपयोग करना चाहिए। इन सभाओं को ईंटें आदि बनाने का काम भी अपने-आप ही करना चाहिए।

(५) मकानों में रहनेवालों की भी सहकारी सभा होनी चाहिए, जो किराया आदि जमा करे।

(६) राज्य सहकारी-समिति को ग्रामों में गृहनिर्माण का कार्य चालू करने के प्रश्न पर विचार करना चाहिए और या तो कुछ सहकारी सभाओं के समूह के लिए एक सहकारी सभा बनानी चाहिए या वह कार्य बहूद्देश्यी सहकारी-सभा के द्वारा ही करना चाहिए।

स्वास्थ्य तथा उपचार-सम्बन्धी सहकारी-संस्थाएं

ग्रामों में स्वास्थ्य की शिक्षा देने तथा उपचार के लिए भी सहकारिता का प्रयोग सफलता से किया जा सकता है। इसमें संदेह नही कि यह कार्य राज्य का है ; परन्तु राज्य को ग्राम में ऐसी सुविधाएं जुटाने के लिए बहुत समय लगेगा। उस समय तक मलेरिया-जैसे संक्रामक रोगों को

हटाने तथा जंगल साफ करने के लिए सहकारिता का उपयोग किया जा सकता है। सरकार को चाहिए कि इन सहकारी-सभाओं को सहायता-रूप में ७५ प्रतिशत तक खर्च दें। परन्तु जहा तक हो सके जीवन-सुधार सम्बन्धी कार्य बहुद्देश्यी सहकारी सभा को ही करने चाहिएं।

सहकारिता में नारी का स्थान

(१) स्त्रियों के लिए सहकारिता में पर्याप्त कार्य तथा महत्वपूर्ण स्थान है और स्त्री-सुधार-सम्बन्धी कार्य में सहकारिता-पद्धति से बड़ी सहायता मिल सकती है। उद्योग-सम्बन्धी सहकारी-सभाओं में उपभोक्ता-भण्डारों आदि के लिए स्त्रियों का सहयोग बड़ा लाभकारी होगा। इसी प्रकार समाज-सुधार के किसी भी कार्य में हमें उनकी सहायता अत्यन्त लाभदायक रहेगी।

(२) हर राज्य के सहकारी-विभाग को चाहिए कि वह एक सहायक रजिस्ट्रार के रूप में स्त्री-कर्मचारी रखे जो इस अंदोलन में सहयोग देने के लिए स्त्री-समाज में प्रचार करे और उनको प्रोत्साहित करे। हर २५ स्त्री-कार्यकर्त्ताओं के लिए एक स्त्री-समाज-सेविका रखनी चाहिए। इस दिशा में विशेष प्रयत्न होना चाहिए कि स्त्रियां उपभोक्ता भण्डारों तथा अन्य सामाजिक आंदोलनों में अधिक-से-अधिक भाग लें।

(३) ग्रामों में वहां की स्थानीय स्त्रियों को सहकारिता का प्रारंभिक सदस्य बना लेना चाहिए। यदि उनके हितों का संरक्षण वहां न हो सके तो उनके लिए एक पृथक संस्था बना लेनी चाहिए। स्त्रियों की पृथक संस्थाएं उनके जच्चा-बच्चा की सहायता तथा उनके क्लब आदि बनाने के लिए स्थापित करनी चाहिएं और ऐसी संस्थाओं को हर प्रकार से प्रोत्साहित करना चाहिए।

यातायात

(१) यातायात संबंधी सहकारी-सभाओं में पदमुक्त सैनिकों का सहयोग बड़ा लाभकारी रहेगा। सरकार को चाहिए कि नाम-मात्र का मूल्य

लेकर अपनी गाड़ियां उनके हवाले कर दें। राज्य सहकारी समिति को इनके विकास तथा उन्नति के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए।

(२) नई सड़कों पर सवारियां तथा माल ढोने का काम ऐसी ही सहकारी सभाओं के लिए सुरक्षित रखा जाना चाहिए। जहां ऐसी सभाओं की संख्या पर्याप्त हो, वहां उनके संघ बना देने चाहिएं ताकि उनके किरायों, विभिन्न रास्तों तथा समय का पूरा तालमेल हो सके।

(३) वर्कशाप भी सहकारी ढंग से आयोजित होने चाहिएं और सरकार को चाहिए कि इस सम्बन्ध में अपनी मशीनरी ऐसी सहकारी संस्थाओं के हवाले कर दे ताकि उनको कार्यवाहन में सुविधा रहे।

(४) मशीनरी आदि के निर्माण का प्रबन्ध भी अपने देश में ही होना चाहिए और सरकार को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि किश्तियां और जहाज भी यहां पर ही बनाये जा सकें।

(५) राज्य सहकारी-समिति को यह निश्चय करना चाहिए कि किस स्थान पर स्वदेश-निर्मित उपकरणों से काम लिया जायगा।

सहकारी बीमा

(१) सरकार को चाहिए कि सहकारिता के आधार पर बीमा-व्यवसाय के आयोजित करने में सहायता दे। इस प्रकार की सहकारी-सभाओं को अपनी व्यवसाय-पद्धति में विशेष सुधार करने पड़ेंगे और विशेषकर उस अवस्था में जहां काम ग्रामीण-क्षेत्र में हो।

(२) इस प्रकार की सहकारी-सभाओं की ओर जनता को प्रोत्साहित करना होगा तथा स्थान-स्थान के लिए योजनाएं बनानी होंगी।

(३) श्रमिकों के लाभ हेतु बीमा की सुविधाएं प्राप्त करने के लिए सहकारी-सभाओं को प्रयत्न करना चाहिए। मध्यमवर्ग के लिए भी यह सुविधाएं सुलभ रहनी चाहिएं। ५,०००) रु० तक की सीमा रखनी चाहिए। राज्य में सहकारी बीमा-सभाओं का संघ होना चाहिए।

(४) संपूर्ण भारत के लिए अग्नि तथा साधारण जीवन बीमा के लिए

संस्थाएं बनानी चाहिएं और मद्रास की रंगी सभा को अखिल भारत सभा में लीन करना चाहिए ।

(५) पशु-बीमा का काम अभी सहकारी-सभाओं को नही लेना चाहिए और न ही फसलों के बीमे का काम लेना ठीक है ।

शासन तथा विधान

यदि सहकारी-आंदोलन का विकास इसलिए करना है कि इससे देश का आर्थिक विकास हो, जनता का जीवन-स्तर ऊंचा हो और उसकी आवश्यकताएं पूरी हों तो सहकारी-विभाग के कर्मचारी ठीक ढंग के होने चाहिएं। इन कर्मचारियों का साधारण जनता से सम्पर्क होना चाहिए और विकास-विभाग से भी इनका पूरा तालमेल होना चाहिए । यह कर्मचारी-समुदाय इतना योग्य होना चाहिए कि इस निरन्तर बढ़ते जानेवाले उत्तरदायित्व को वह सहर्ष और योग्यता से सम्हाल सके ।

(२) कर्मचारियों तथा पदाधिकारियों के पदों के नाम हर राज्य में जहांतक सम्भव हो, एक से ही होने चाहिएं ।

(३) विभाग के नये संगठन मे रजिस्ट्रार का महत्व बढ़ने वाला है । अतः उसकी नियुक्ति देखभाल कर होनी चाहिए । इस कार्य में उसकी विशेष रुचि होनी चाहिए । कार्यारम्भ करने के पूर्व उसे प्रशिक्षण मिलना चाहिए और २ वर्ष तक डिप्टी रजिस्ट्रार या सह (Joint) रजिस्ट्रार के पद पर काम करने का अवसर मिल जाना चाहिए । यह अधिकार इण्डियन सिविल सर्विस या प्रांतीय सहकारी सर्विस का होना चाहिए । इस पद का महत्व भी बढ़ा देना चाहिए और इसे उसी स्तर पर ले आना चाहिए जिसपर पुलिस या पी० डब्ल्यू० डी० के विभाग होते हैं । पद की अवधि १० वर्ष होनी चाहिए ।

(४) सहकारी-विभाग के कर्मचारियों को विशेष प्रशिक्षण मिलना चाहिए । इनके पदों के ग्रेड आदि राजस्व-विभाग के कर्मचारियों के बराबर होने चाहिएं ताकि अच्छी शिक्षा तथा योग्यता वाले व्यक्ति इन पदों पर

आने के लिए लालायित हों ।

(५) संगठन तथा प्रचार-हेतु गैरसहकारी-तत्वों का उपयोग करना अधिक लाभदायक होता है । निःशुल्क प्रचारकों की सेवाओं के क्रम को प्रोत्साहित करना इसमें जरूरी है ।

(६) पर्यवेक्षण का कार्य राज्य सहकारी-संघ द्वारा होना चाहिए और इसका खर्च निकालने के लिए राज्य को चाहिए कि उनको आर्थिक सहायता दे ताकि कार्य सुगमता से चले । सहकारी संघों को चाहिए कि अपने कार्य का विकेन्द्रीकरण करके स्थानीय सहकारी-संगठनों तथा सहकारी सभाओं द्वारा पर्यवेक्षण करवाये । बैंकों द्वारा पर्यवेक्षण की प्रथा को प्रोत्साहन नहीं दिया जा सकता ।

(७) निरीक्षण का कार्य पूर्ववत् विभाग द्वारा ही होते रहना चाहिए। यह कार्य गैरसरकारी संस्थाओं को धीरे-धीरे ही सम्हाला जा सकता है। लेखा-परीक्षण का काम भी विधान अनुसार रजिस्ट्रार का ही कर्त्तव्य रहना चाहिए। इस कार्य को गैर-सरकारी संस्थाओं के हाथ में सौंपने का अधिकार भी रजिस्ट्रार को ही होना चाहिए ; लेकिन परीक्षण तथा पर्यवेक्षण के कार्य एक ही व्यक्ति के पास रहने ठीक नहीं । सहकारी-सभाओं का श्रेणी-विभाजन राज्यपत्र में प्रकाशित होना चाहिए । इसमें कोई संदेह नहीं कि विकास के नए उतरदायित्व सहकारी-संस्थाओं पर पड़ने से राज्य द्वारा पर्यवेक्षण कुछ काल तक स्वाभाविक ही होगा; परन्तु इसको धीरे-धीरे कम करते जाना चाहिए जिससे किसी समय यह पूर्णतया समाप्त हो जाय ।

(८) गैरसरकारी संस्थाओं तथा विकास-सम्बन्धी संस्थाओं व विभागों का भी सहकारी-संस्थाओं के साथ पूर्ण तालमेल रहना चाहिए ।

(९) राज्य में एक सहकारी-समिति बननी चाहिए । इस संस्था को चाहिए कि सहकारिता द्वारा आर्थिक विकास करने की योजनाएं बनाये और उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने के लिए उपाय करे । सहकारी विभाग का मंत्री इसका प्रधान बने और सहकारी विभाग का रजिस्ट्रार सेक्रेटरी तथा सह-रजिस्ट्रार की श्रेणी का अफसर सहायक मंत्री । इसमें गैर

सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक होनी चाहिए। बैठक वर्ष में दो बार हो। साथ ही इसकी एक प्रबन्ध कमेटी भी होनी चाहिए, जिसका सारा खर्च सरकार दे। इस समिति के दो भाग होने चाहिएं: एक समिति के सब कार्य पर नियंत्रण रखें और दूसरा राज्य-शासन को मंत्रणा दे।

(१०) अखिल भारत सहकारी-कौंसिल विभिन्न राज्यों को मंत्रणा दे ताकि विभिन्न प्रकार की सहकारिता के सम्बन्ध में विचार-विमर्श होता रहे। इस कौंसिल के खर्च के लिए प्रथम पांच वर्षों में २० लाख रुपया सरकार द्वारा मिलना चाहिए।

सहकारी विधान

(१) समय तथा आंदोलन की प्रगति से यह अनुभव किया जा रहा है कि सन् १९१२ के सहकारी-विधान में परिवर्तन आवश्यक हो गया है। अतः जिन राज्यों ने अभी तक एक्ट नहीं बनाये और जहां सन् १९१२ का ही विधान लागू है, वहां समय की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए नया विधान बनाया जाय। ऐसा करते समय उनको चाहिए कि अन्य राज्यों द्वारा बनाये गए विधानों का भी अध्ययन कर लें।

(२) रजिस्ट्रार की परिभाषा में रजिस्ट्रार औद्योगिक सहकारी सभा तथा संचालक लघु-स्तर उद्योग भी सम्मिलित होने चाहिएं।

(३) एक्ट में इस बात का प्रावधान रहना चाहिए कि सभाएं अपनी जिम्मेदारी सीमित से असीमित तथा असीमित से सीमित में तब्दील कर सकें।

(४) रजिस्ट्री से इन्कार करने तथा रजिस्ट्री तनसीख करने के विरुद्ध अपील का प्रावधान रहना चाहिए।

(५) रजिस्ट्रार को ऐसे सब संशोधन रजिस्टर्ड करने के लिए बाध्य होना चाहिए, जो विषयानुकूल हों।

(६) सभाओं के सम्मिलन तथा विभाजीकरण का विधान रहना चाहिए।

(७) धारा १३ को संशोधित करके प्रावधान रखना चाहिए कि व्यक्तिगत सदस्यों का एक ही मत रहे। भले ही उनके कितने भाग हों। परन्तु सभाओं के प्रतिनिधियों की संख्या उनके सदस्यों की संख्यानुसार बढ़ाई जा सकती है ।

(८) धारा १९ मे दर्ज अधिकार (Lien) को प्रथम भार (first charge) में परिवर्तन कर देना चाहिए और अवधि १८ मास कर देनी चाहिए।

(९) मृत सदस्य के सम्बन्धी की जिम्मेदारी धारा २९ के अधीन १ वर्ष से बढ़ा कर २ वर्ष की जानी चाहिए। रजिस्ट्री के समाप्त हो जाने के बाद सदस्यों का उत्तरदायित्व समय के बीतने के कारण समाप्त नही होना चाहिए और परिसमापन (Liquidation) के दो वर्ष पूर्व सदस्यता छोड़ने वाले को उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं समझना चाहिए।

(१०) जिन नागरिक बैंकों का भाग-धन और सुरक्षित कोष १०,००० रुपया या इससे अधिक हो, उनको अधिकार होना चाहिए कि वे ४० प्रतिशत तक अपना धन किसी भी ऐसे कार्य में लगाएं जिसके लिए प्रबन्धक मण्डल ने एकमत होकर फैसला किया हो।

(११) सभा के सम्बन्ध में कोई भी झगड़ा नागरिक न्यायालय में नहीं जाना चाहिए ।

(१२) परिसमापक (Liquidator) की नियुक्ति के लिए इस बात का भी विचार रखना चाहिए कि यह नियुक्ति रजिस्ट्री समाप्त होने तथा उसके विरुद्ध अपील के निर्णय के लिए जो समय लगता है, उस समय में भी जरूरी है। परिसमापक (Liquidator) को काम चलाने तथा कार्य-सम्पादन करने के लिए पर्याप्त शक्तियां प्रदान की जानी चाहिएं। परिसमापक को किसी की सुने बिना कोई भी विपरीत निर्णय नही देना चाहिए।

(१३) यह भी आवश्यक है कि सालसी निर्णय से पूर्व की कुर्की का प्रावधान रहे जैसे कि मद्रास में रखा गया है ।

(१४) या तो रजिस्ट्रार को नागरिक न्यायालय के अधिकार होने चाहिएं या सहकारी-सभाओं के ऋण को राजस्व ऋण (Arrears of Land Revenue) के समान वसूल किया जाना चाहिए और कलक्टर को इस कार्य के निमित्त विशेष कर्मचारी दिये जाने चाहिएं।

(१५) रजिस्ट्रार को यह भी अधिकार मिलना चाहिए कि वह मध्यस्थ के रूप में कार्य करते समय किसी विवाद के कागदपत्र अपने पास मंगवा सके। परन्तु ऐसी आज्ञा जारी करने से पूर्व उभय पक्ष को सुनवाई की पूरी सुविधा दी जानी चाहिए।

(१६) किसी नागरिक न्यायालय को, सुनवाई के अधिकार को छोड़ कर, किसी अन्य प्रश्न पर सहकारी सभा के विवाद में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

(१७) अवधि-सम्बन्धी विधान का भी आवश्यकतानुसार संशोधन करना चाहिए और इसपर पुनः विचार भी जरूरी है।

(१८) ऋण-सम्बन्धी कानून, जो विभिन्न राज्यों में बनाये गए हैं, उनका सहकारी-सभाओं पर कोई प्रभाव नहीं होना चाहिए।

(१९) स्टाम्प-ड्यूटी आदि से मुक्ति के लिए विशेष प्रावधान रखना आवश्यक है। राज्य सरकार को मनीआर्डर-कमीशन की भी ७५ प्रतिशत तक वापसी करनी चाहिए।

(२०) वेतन प्राप्त करनेवालों की सभाओं को धारा ६० नागरिक न्यायविधि से मुक्त रखना चाहिए और यह भी प्रावधान रहना चाहिए कि वेतन में काट करने का इकरार वैध समझा जाय और मालिक (employer) के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि जबतक सहकारी-सभाओं का ऋण पूरे तौर पर चुकता न हो जाय, कमीशन कटती रहे।

(२१) छोटी-छोटी सिंचाई की योजनाएं चालू करने के लिए यह आवश्यक है कि इसका कर असदस्यों से भी प्राप्त किया जा सके।

(२२) रिजर्व बैंक एक्ट में भी संशोधन होना चाहिए और धारा १७

(२) ख, १७ (४) ग तथा १७ (४) घ मे अवधि १२ मास कर दी जानी चाहिए।

धारा १७ मे शब्द फसल की परिभाषा में घी, दूध, मलाई, ऊन आदि भी शामिल होने चाहिएं। राज्य सहकारी-बैंकों व औद्योगिक सहकारी सभाओं को ऋणादि देने का प्रावधान रहना चाहिए।

शिक्षण, प्रशिक्षण तथा अन्वेषण

(१) भारत में सहकारिता के आन्दोलन की प्रगति में हर राज्य में एक जैसा विकास न होने का कारण केवल यह है कि इस आन्दोलन में प्रशिक्षण का अभाव रहा है। इसका इलाज केवल यह है कि समूचे देश में सहकारी प्रशिक्षण का प्रचार हो।

(२) शिक्षण तथा प्रशिक्षण देना वैसे कर्त्तव्य तो राज्य का हैं; परन्तु सहकारी-संस्थाएं भी इस कार्य मे पर्याप्त सहयोग दे सकती है। सरकारी तथा गैरसहकारी व्यक्तियों को चाहिए कि वह सहकारिता के विषय पर लोगों से बातचीत करें और ऐसी बातचीत सहकारी संस्थाओं द्वारा आयोजित की जाय।

(३) स्कूलों में इसका प्रचार अधिक आवश्यक है ताकि लड़के-लड़कियों में सहकारिता का प्रचार हो। सहकारिता का विषय स्कूलों के पाठ्यक्रम मे होना चाहिए।

(४) सहकारी विभाग के कर्मचारियों, सहकारी-सभाओं के सदस्यों तथा कर्मचारियों का प्रशिक्षण अति आवश्यक है।

(क) सभाओं के कर्मचारियों का प्रशिक्षण ६ सप्ताह के लिए होना चाहिए।

(ख) विभाग कर्मचारियों को ६ सप्ताह के क्षेत्रीय-प्रशिक्षण के बाद कार्य में लगाया जाना चाहिए।

(ग) प्रशिक्षण-हेतु कालिज स्थापित किया जाना चाहिए।

(घ) पाठ्यक्रम ध्यान से बनाया जाना चाहिए।

रजिस्ट्रार-सम्मेलन

सन् १९४७ में १२ से १४ मई तक रजिस्ट्रारों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें सहकारी योजना-समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद यह सुझाव उपस्थित किया गया था कि सहकारी योजना समिति जिन महत्व-पूर्ण प्रस्तावों पर, सम्मेलन में विचार नहीं कर सकी, उन पर भली प्रकार विचार किया जाय। इस सहकारी योजना समिति के सदस्य ये थे :

१. श्री आर. जी. सरय्या—प्रधान बम्बई केन्द्रीय सहकारी बैंक
२. श्री जे. सी. रामन—ज्वाईण्ट रजिस्ट्रार मदरास
३. श्री माधवरावजी देशपाण्डेय—संचालक, मध्य प्रदेशी केन्द्रीय बैंक
४. श्री ए. वी. एन. सिंह—मीठापुर पटना
५. श्री एम. आर. भिडे—रजिस्ट्रार पंजाब
६. श्री सिद्दीकहुसैन—रजिस्ट्रार उत्तर-प्रदेश
७. श्री एम. एम. अकरम—रजिस्ट्रार बम्बई
८. श्री हीरालाल काजी—प्रधान अखिल भारतीय सहकारी यूनियन
९. श्री जे. एच. विल्किसन—डायरेक्टर टी सैटलमेंट शिमला
१०. श्री अबुल्हलीम गजनवी एम. एल. ए.—कलकत्ता
११. श्री सी. एन. वकील अर्थशास्त्री—भारत सरकार
१२. श्री शेरजंगखां—रिजर्व बैंक आफ इण्डिया

परन्तु जो उपसमिति २९ दिसम्बर १९४७ को नियुक्त हुई उसके प्रधान श्री आर. जी. सरय्या के अतिरिक्त १० अन्य सदस्य थे—

१. श्री टी. ए. रामालिंगम चेटियर—प्रधान केन्द्रीय बैंक मदरास
२. श्री बी. जे. पटेल—मंत्री बड़ौदा सहकारी संस्था
३. श्री दीपनारायणसिंह—एम. एल. ए. पटना
४. श्री डब्ल्यू. आर. नाटू—कृषि मंत्रालय भारत सरकार
५. रजिस्ट्रार, यू. पी.
६. रजिस्ट्रार, मध्य प्रदेश
७. रजिस्ट्रार, राजस्थान

८. श्री के. सुब्बाराओ—रिजर्व बैंक

९. श्री वी. वीय्याम्मा—मद्रास सहकारी यूनियन

१०. श्री एन. सत्यनारायण—प्र० ग्रामीण केन्द्रीय बैंक अलमारू, गोदावरी

इस समिति को विचार के लिए केवल निम्न विषय ही सौपे गये थे :

(१) अखिल भारतीय सहकारी मण्डल (All India Co-operative Council) का निर्माण,

(२) सहकारी अधिनियम में संशोधन

(३) रिजर्व बैंक अधिनियम में संशोधन

(४) रिजर्व बैंक की आंकड़ों सम्बन्धी तालिकाओं में संशोधन

उक्त उप-समिति के प्रस्ताव इस प्रकार थे:—

(१) अखिल भारतीय सहकारी इन्स्टीट्यूट, अखिल भारतीय प्रादेशिक संगठन, तथा सहकारी बीमा सभा का एकीकरण करके भारतीय सहकारी सभा (association) के नाम से संगठित किया जाय। इसका विधान ऐसा रहे कि सब प्रकार की सहकारी सभाएं इसमें शामिल हो सकें।

(२) इसको सरकार से उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए। यह सहकारी सम्मेलन भी बुलाएं।

(३) अखिल भारतीय सहकारी सम्मेलन तथा रजिस्ट्रारों के सम्मेलन भी इकट्ठे बुलाये जायं। ऐसे सम्मेलन उपरोक्त सभा ही बुलाया करे।

(४) इसके २५० सदस्य होने चाहिएं, जिसमें सरकारी सदस्य-संख्या ११० तक होगी। हर राज्य के ५ से अधिक सदस्य मनोनीत नहीं होंगे। इनकी कुल संख्या १०० से अधिक न होगी। १० सदस्य केन्द्रीय सरकार मनोनीत करेगी और इतने ही अखिल भारतीय सहकारी-सभा। हर प्रादेशिक सभा का कम-से-कम एक प्रतिनिधि होगा। २ प्रादेशिक यूनियन के प्रतिनिधि होंगे। एक रिजर्व बैंक का प्रतिनिधि, दो प्रसिद्ध सहकारी-

कार्यकर्त्ता, जो केन्द्रीय सरकार तथा भारतीय सहकारी-सभा की प्रबन्धक समिति द्वारा मनोनीत होंगे ।

(५) सम्मेलन के अधिवेशन पर अ० भा० सभा का प्रधान ही सभापतित्व करेगा। उसकी अनुपस्थिति में प्रबन्धक सभा निर्वाचित करेगी ।

(६) सरकारी मनोनीत सदस्यों के आने-जाने का व्यय सम्बन्धित सरकार देगी तथा अन्य सदस्य अपनी-अपनी संस्थाओं से यह खर्च प्राप्त करेंगे ।

(७) एक केन्द्रीय सहकारी मण्डल बनाया जाय, जो केन्द्रीय कृषि मंत्रालय को सहकारिता पर मंत्रणा दे। इसके दस सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त होंगे और दस अ०-भा० सहकारी-सभा के प्रतिनिधि प्रबन्ध समिति द्वारा नियुक्त होंगे । इसका प्रधान केन्द्रीय सरकार का सहकारिता-सम्बन्धी मंत्री होना चाहिए । सदस्यों की पदावधि ३ वर्ष रखी जाय ।

(८) समिति के कर्तव्य यही होंगे कि वह मंत्रणा दे तथा उससे सलाह ली जा सके ।

(९) कृषि-मंत्रालय में सहकारी निर्देशन-विभाग खोला जाय। इसका अध्यक्ष अनुभवी सहकारी-कार्यकर्त्ता हो। वहां कार्य का एकीकरण तथा सहकारिता पर अन्वेषण हो, तथा सहकारी-ज्ञान का संग्रह तथा प्रसार हो।

(१०) सहकारी विधान में संशोधन उन राज्यों के अनुसार किया जाय जिनके सहकारी-अधिनियम अधिक पूर्ण हों ।

(११) सहकारी अधिनियम २–१९१२ को रिपोर्ट के निर्देशानुसार संशोधित किया जाय ।

(१२) करों से मुक्ति के लिए सब राज्यों को एक दूसरे की सहायता के लिए कानून पास करना चाहिए ।

(१३) अधिनियम में इस प्रकार संशोधन हो जिससे वह अपनी सम्पत्ति में से शिक्षा-हेतु दान दे सके ।

रिजर्व बैंक तथा सहकारी आन्दोलन

(१४) रिजर्व बैंक तथा सहकारी आन्दोलन—सहकारी सभाओं तथा बैंकों के प्रोनोट रिजर्व बैंक में उन शर्तों पर जमानत रूप में स्वीकार हो सकें जो रिजर्व बैंक निर्धारित करे। धारा १७ में से शब्द आवश्यक (essential) हटा कर उसे उदार बनाया जाय।

फसल शब्द की जगह कृषि-उत्पादन रखा जाय तथा औद्योगिक सहकारी सभाओं को भी ये सुभीते दिये जा सकें।

ऋण की अवधि ९ मास से बढ़ा कर १२ मास कर दी जाय।

(१५) सहकारी वित्त-सहायता नई धाराओं के अधीन लाई जाय (आगे संशोधनों का व्योरा है)

(१६-१७) धाराओं के संशोधनों का व्योरा है। धारा १७ (४) (b), और धारा १७ (४) (d) के संशोधन का व्यौरा।

१८. विक्रय-सम्बन्धी सभाओं के संग्रह-कार्य को विक्रय-कार्य की सीमा के अन्दर ही समझना चाहिए ताकि इसके लिए भी रिजर्व बैंक ऋण दे सके। यदि उनका लाभ किसी अंश में उत्पादकों को जाता हो तो उन्हें रियायती दरों पर रुपया मिलना चाहिए।

१९. अधिनियम में दर्ज सब सहकारी-सभाओं की उचित ऋण-सम्बन्धी आवश्यकताओं को रिजर्व बैंक पूरा करे।

२०. रोक-अवशेष की शर्त को छोटे बैंकों के सिलसिले में उदार कर देना चाहिए।

२१. रिजर्व बैंक द्वारा रकम निकालने के लिए ७ दिन की शर्त की उपधारा की वापसी का स्वागत करना चाहिए।

२२. रिजर्व बैंक को जमानत के रूप में ऋण-अधिकोषों के डिबैंचर स्वीकार कर लेने चाहिएं।

२४. रिजर्व बैंक द्वारा सस्ते ब्याज की दरों की रियायत केन्द्रीय बैंकों को भी मिलनी चाहिए, ताकि वह भी ब्याज की दरों का मन्ना कर सकें।

२४. नि.शुल्क धनादेश (free remittance) की सुविधाएं सहकारी संस्थाओं को पुनः प्राप्त होनी चाहिए।

२५. ऋण लेने वाली प्रारम्भिक सभाओं की पड़ताल रिपोर्ट तथा अवशेष-पत्र यदि आवश्यक हो, तो ली जाया करे।

२६. ऋण लेने वाले बैंको की आर्थिक परिस्थिति की रिजर्व बैंक ऋण देने से पूर्व जांच कर लेता है। अधिकतम ऋण सीमा सुविधाओं के लिए है; परन्तु रिजर्व बैंक को यह छूट है कि विशेष परिस्थितियों में इस सीमा से अधिक ऋण दे दे।

सहकारी संगठन

२७. 'ए' तथा 'बी' वर्ग की नई सभाओं की, जिनको रजिस्ट्रार साख-सम्पन्न घोषित करे, प्रार्थनाओं पर उदारता-पूर्ण विचार होना चाहिए। सारे प्रान्तों में वर्गीकरण एक जैसी पद्धति के अनुसार होना चाहिए।

२८. रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तावित तथा रजिस्ट्रार सम्मेलन द्वारा परीक्षा की गई तालिकाओं के प्रारूपों की सिफारिश पृथक की गई है।

२९. परिशिष्ट 'A' में लिखित सभाओं के वर्गीकरण को ही रखा जाय।

३०. त्रैमासिक वित्तीय तालिकाओं के परित्याग के प्रस्ताव को स्वीकार किया जाय।

३१. सब राज्यों को ३० जून सहकारी वर्ष की अन्तिम तिथि स्वीकार करनी चाहिए और इसी तारीख को सहकारी सभाओं के हिसाब बन्द करने चाहिएं।

भारतीय संविधान

जैसा कि पूवतः वर्णित तथ्यों से स्पष्ट हो गया है, भारत की अपनी

ही सहकारी-परम्परा है। सहकारिता भारत की एक निजी विचार-धारा है, जो इस देश की हर प्रथा तथा हर संस्था में मौलिक रूप से विद्यमान है। परन्तु अंगरेजी राज्य के स्थापित होने पर पंचायती सिद्धान्त पर पहला आक्रमण हुआ। नीति-निपुण अंगरेज ने इसी ग्राम-स्वराज्य में भारत की वास्तविक सत्ता देखी और इसी पर प्रहार करके देश को निर्बल करने की योजना बनाई। इधर पंचायतों को अंगरेज ने नष्ट-भ्रष्ट किया, उधर सहकारिता का आन्दोलन अन्य देशों में पनप रहा था। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंगरेज अपने शासन को प्रतिगामी कहलवाना नहीं चाहता था। अतः उसने भारत में सहकारिता के आन्दोलन को जारी किया। परन्तु हमारी पंचायती परम्परा के ठीक विपरीत और सहकारिता के सिद्धान्तों के विरुद्ध "व्यवसाय-समता" की घोषणा का आश्रय लेते हुए अंगरेज सरकार ने जाति-जाति, वर्ण-वर्ण, नागरिक-ग्रामीण, किसान-दुकानदार, हिन्दू-मुसलमान में एक नवीन शत्रुता का विष उत्पन्न कर दिया। कानून बनाथा, उसमें संशोधन किये; परन्तु हर बार "फूट डालो और राज करो" के सिद्धान्त को सामने रखा और उसे आगे बढ़ाया। फल यह हुआ कि आन्दोलन सामूहिक रूप से उदार विचारों को अपना कर आगे न बढ़ सका। इतना ही नहीं, व्यवसायों तक में ऐसी छांट कर दी गई कि एक छोटे-से ग्राममें कई सभाएं बन गई। एक-एक ग्राम में, जिसकी जनसंख्या १०० परिवारों की होती थी, कई सभाएं बनीं, जैसे ब्राह्मणों, राजपूतों, डूमों, चमारों, बढ़इयों की सहकारी-सभाएं। कोई भी दस सदस्यों की सभा ऋण के लिए, उद्योग के नाम पर, कृषि-सुधार के हेतु स्थापित होने लगी। इनमें से कोई भी सभा पनप न सकी क्योंकि सामूहिकता का वास्तविक स्वरूप ही इन सभाओं को न मिल सका। एक-आध सभा को छोड़, आन्दोलन बढ़ न सका और विदेशी शासक यह कहते रहे कि भारतीय अपढ़ हैं, पिछड़े हुए हैं और किसी ऐसे आन्दोलन को सफल नहीं बना सकते। इन सब अड़चनों के होते हुए भी हमारी प्राचीन परम्परा जाग रही थी, देश अंगड़ाइयां ले रहा था। कार्यकर्ताओं के अन्दर भी भावनाएं प्रस्फुटित हो रही थीं। देश काजी, सरय्या

रामन-सरीखे सहकारिता के विशारद पैदा कर रहा था। राजनैतिक जागृति के साथ आर्थिक स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए भी देशवासी उतावले हो रहे थे। उन्हें सहकारिता में आर्थिक विषमता को अहिंसामय मार्ग से हटाने का एक-मात्र उपाय दीख रहा था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आर्थिक स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए सहकारिता को अत्युत्तम साधन घोषित किया। अतः विदेशी शासकों की नीति के विरुद्ध भी भारतीय कार्यकर्ताओं ने आन्दोलन को नवजीवन प्रदान किया। भारतीय परम्परा के अनुसार मद्रास ने "बहूद्देश्यी सहकारी सभा" की संस्था को जन्म दिया। जब यह सब कुछ हो रहा था तभी सन् १९४४ में सब प्रान्तों के रजिस्ट्रारों का एक सम्मेलन हुआ और उन्होंने आन्दोलन को विस्तृत तथा पुष्ट करने के लिए कुछ सुझाव दिये। इसीके फलस्वरूप १९४५ में सहकारी योजना-समिति का निर्माण हुआ। यह वह समय था जब विश्व-युद्ध समाप्त हो चुका था। भारतीय राजनैतिक वातावरण में कई उलट-फेर हो रहे थे। स्वतंत्रता-संग्राम अपनी मंजिल के नजदीक पहुंच रहा था। विदेशी शासक इस रिपोर्ट के प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिए क्रियाशील भी नहीं था। अतः इस रिपोर्ट पर अमल होने से पूर्व ही देश स्वतंत्र हो गया और देश का संविधान बनाने के लिए एक महासभा बैठी। देश के प्रतिनिधियों ने मिल कर यही निश्चय किया कि हमारा देश एक सहकारी साझे गणतंत्र का राज्य होगा। इस सैद्धान्तिक विचारधारा ने सहकारिता के आंदोलन को प्रगति तथा पुष्टि प्रदान की और सहकारी आन्दोलन देश के पुनर्निर्माण के लिए एक परमाग्रणी साधन माना गया। इस विचारधारा ने सहकारी योजना-समिति के प्रस्तावों की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया और उनको प्रोत्साहन मिला। इसी विचार से योजना-समिति (Planning Commission) में सहकारिता के सिद्धान्त को बहुत महत्व मिला। आगामी पृष्ठों में पंचवर्षीय योजना में सहकारिता के स्थान का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

पंचवर्षीय योजना में सहकारिता

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ; परन्तु विभाजन के कारण इस देश के सहकारी-आन्दोलन को भी बड़ा भारी धक्का लगा। पंजाब, जो सहकारिता के लिए बहुत प्रसिद्ध था, दो भागों में बंट गया। आन्दोलन का केन्द्र—लाहौर—पाकिस्तान में चला गया। परन्तु स्वतंत्र देश ने सहकारिता के महत्व को आंकने में देर नहीं की। कुछ राज्यों ने नए सहकारी विधान बनाये और कई राज्यों ने पहले विधानों में ही संशोधन किया। सहकारी योजना-समिति की रिपोर्ट, जिसका संक्षिप्त विवरण पिछले पृष्ठों में दिया गया है, की ओर भी जन-नेताओं का ध्यान गया। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् १९५० में राष्ट्रीय योजना-समिति का निर्माण हुआ, जिसके फलस्वरूप प्रथम पंचवर्षीय योजना १९५२ में प्रकाशित हुई। हर विकास-समिति ने अपनी-अपनी रिपोर्ट में सहकारिता की महत्ता तथा उपादेयता को पूरी तरह से स्वीकार किया। पंचवर्षीय योजना ने तो ग्राम्य-जीवन के विकास के लिए ग्राम की राजनैतिक इकाई पंचायत तथा सहकारी सभा को विकास के लिए परमावश्यक माना। स्थान-स्थान पर सहकारिता की उपादेयता का वर्णन पंचवर्षीय योजना में मिलता है। उसका संक्षेप योजना-समिति के अपने शब्दों में देना अधिक उचित है। विषय बहुत लम्बा न हो अतः नीचे लिखी पंक्तियों मे पंच-वर्षीय योजना में से सहकारिता-सम्बन्धी स्थलों को ही उद्धृत किया गया है।

पंचवर्षीय योजना—विकास के लिए ग्राम-संगठन

(पृ. १३२, पैरा १३) पिछले कई वर्षों तक गांव पुलिस-राज व आय की प्राथमिक इकाई रहे हैं; परन्तु ब्रिटिश शासन के अधीन सामाजिक व आर्थिक संगठन के रूप में इनकी शक्ति कमजोर पड़ती गई। जैसे-जैसे स्थिति आम दिनों-जैसी होती गई ग्राम-समुदाय शासन पर अधिक निर्भर होता गया और अपने काम स्वयं करने की योग्यता घटती गई। यहां तक कि विकास-विभाग

द्वारा आरम्भ किये गए कार्य भी समस्त ग्राम-समुदाय के लिए न होकर कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रहे। यही कारण है कि पिछले तीस वर्षों के विकास-कार्य से जन-संख्या का थोड़ा-सा भाग ही प्रभावित हो पाया है।

(१४) प्राय: सभी राज्यों में ग्राम-पंचायतों की स्थापना के लिए कानून बने हुए हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात कई-एक राज्यों ने पंचायतों की शीघ्र स्थापना एवं उनके कार्यक्षेत्र को बढ़ाने के उद्देश्य से अपने पहले कानूनों में कई-एक परिवर्तन कर दिये हैं। विलीन किये हुए कई नए क्षेत्रों में अभी भी बहुत कार्य करने को है। देखा जाय तो कहा जा सकता है कि भारत के पंचायत-कानून, प्रगतिशील विचार एवं ग्राम पंचायतों को राष्ट्रीय ढांचे में एक आवश्यक आधार बनाना हमारी तीव्र इच्छा के द्योतक हैं। यह अधिनियम, संविधान में निर्दिष्ट इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने का एक प्रयत्न है, जिसके अनुसार समस्त राज्य ग्राम-पंचायतों का संगठन करें और उन्हें ऐसे अधिकार व शक्तियां प्रदान करें जिनसे वे स्वायत्त शासन की इकाई बन सकें। इस सिद्धान्त को कार्य-रूप में परिणत करने में कई एक राज्यों ने तो काफी प्रगति की है, परन्तु सम्पूर्ण देश में अभी बहुत कुछ करना बाकी है। हमारा सुझाव है कि प्रत्येक राज्य के लिए कुछ वर्षों के अन्दर ग्रामों अथवा ग्राम-समूहों में पंचायतें स्थापित करने का एक कार्यक्रम बना लेना चाहिए।

(१६) जहां सहकारी-सभाएं (कुआपरेटिव सोसायटियां) तथा पंचायतें दोनों काम कर रही हों वहां यह आवश्यक है कि ग्रामीण जीवन में इनके अपने-अपने कार्यक्षेत्र व्यक्त रूप से निश्चित कर दिए जायं। बहुत-सी सहकारी-सभाएं अब बहूद्देश्यी संस्थाओं में परिवर्तित की जा रही हैं, परन्तु अभी तक यह काम व्यापक नहीं हुआ है। सहकारी संस्थाओं का कार्यक्षेत्र उन उद्देश्यों से नियंत्रित होता है, जिनकी पूर्ति के लिए, उनका निर्माण किया गया हो। परन्तु ये उद्देश्य केवल इनके सदस्यों के हित तक ही सीमित होते हैं। जिस गति से सहकारिता की भावना बढ़ेगी, उसी गति से यह

आन्दोलन ग्राम-समुदाय का और अधिक प्रतिनिधित्व कर सकेगा। परन्तु पंचायत को तो, ऐसे सम्पूर्ण ग्राम-समुदाय का प्रतिनिधित्व करना ही होगा, जिसमें वे भूमिहीन लोग भी होंगे, जो न तो खेती-बाड़ी करते हैं और न सिर उठा कर स्वाधीनता से जीवन बिता पाते हैं। उनके अतिरिक्त परम्परा व नियमों के अनुसार गांव के मामलों पर ग्राम-पंचायत का किसी और संस्था की अपेक्षा कहीं अधिक अधिकार होता है। यदि ग्राम-पंचायत का विकास-कार्यों के साथ सुदृढ़ तथा निकटतम सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय तो ग्राम-नेतृत्व को सफलतापूर्वक विकसित किया जा सकता है। इससे सहकारी-आन्दोलन को भी बहुत सहायता मिलेगी।

सहकारिता

अन्य देशों की भांति भारत में भी सहकारिता का विकास अपेक्षाकृत साधनहीन नागरिकों को ऐसी सुविधाएं देने के लिए हुआ, जिन्हें अधिक अच्छी स्थिति वाले लोग अपने निजी साधनों के बल से प्राप्त कर सकते थे। सहकारिता न केवल जनसाधारण के आर्थिक कष्टों के विरुद्ध एक प्रभावशाली उपाय है, बल्कि इससे उनमें आत्मनिर्भरता की दृढ़ भावना का भी उदय होता है। अपने अनुभव और जानकारी को केन्द्रीभूत करके तथा एक-दूसरे की मदद से वे न केवल अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का ही हल कर सकते हैं, बल्कि अच्छे नागरिक भी बन सकते हैं।

(१) छोटे भूस्वामियों की अपेक्षा गतिविहीन आर्थिक नीति में जहां हम एक मध्यवर्ती दशा में हैं, वस्तु-विनिमय को छोड़कर रुपये के युग में दाखल हो रहे हैं और स्थानीय से अन्तर्राष्ट्रीय जगत में प्रवेश कर रहे हैं, वहां रुपये का होना हमें विशेष लाभ प्रदान करता है।

मानवता-विरोधक अतिशय ब्याज लेने की प्रथा व ग्रामों में सर्वत्र फैली हुई गरीबी के नियामक कानूनों की सीमित सफलता ने, जनता को आपस में मिल कर ऋण-सम्बन्धी (credit) सभाएं बनाने के लिए उत्साहित किया। उस समय की निराशावादी आर्थिक दशा में ऐसी

एक संस्था का निर्माण, जो सरकार द्वारा चलाई गई थी, बड़ा भारी काम था। जब सहकारी एक्ट १९०४ में पास हुआ तबसे भारतवर्ष में इस आन्दोलन के, न केवल बहुत से प्रकार ही हो गए हैं, बल्कि यह एक नई सामाजिक शक्ति बन रहा है। जब व्यक्तिवाद का समय था, तब सहकारिता व्यक्तियों के लिए एक बचाव के मोरचे के रूप में देखी जाती थी; परन्तु अब सामाजिक जीवन में सहकारिता के आन्दोलन का महत्त्व बढ़ गया है।

(२) सहकारिता उन्नति की एक ऐसी योजना है जो कुछ विकेन्द्रीकरण और स्थानीय लाभ दृष्टि में रखते हुए भी सर्वतोमुखी उन्नति का काम करेगी। भारतवर्ष, इंग्लैंड व अन्य दूसरे देशों का अनुभव है कि सहकारिता न केवल निजी काम में ही ठीक है, परन्तु यह जनतन्त्र राज्य की योजना में एक बड़ा भारी तथा आवश्यक साधन है।

(३) इस समय भारत में १,७३,००० सहकारी सभाएं हैं, जिनके १,२०,००,००० सदस्य हैं और जिनकी चालू राशि ३२ करोड़ रु. है। यह एक बड़ी आर्थिक तथा सामाजिक शक्ति है। पिछले पांच वर्षों में सहकारी आंदोलन ने काफी उन्नति की है। इसकी उन्नति केवल इसीमें नहीं कि उसके सदस्य बढ़ गए हैं या इसका फैलाव अधिक हो गया है; परन्तु इसने पिछले पांच वर्षों में और बहुत से काम सम्हाल लिये हैं। हर प्रकार की कृषि सम्बन्धी सभाओं के लिए ऋण, मण्डियां, सिंचाई, चकबन्दी आदि की सभाएं तथा गांव और शहरों में उपभोक्ता-भण्डार, औद्योगिक सभाएं, गृह-निर्माण-सम्बन्धी सभाएं, कारखानों की सभाएं और नागरिक बैंक भी खोले गए हैं। कृषि सम्बन्धी सभाएं कम-से-कम ८० प्रतिशत हैं और इनमें ऋण-सम्बन्धी सभाएं उससे भी अधिक हैं। बहूद्देश्यी सभाएं भी काफी उन्नति कर रही हैं। द्वितीय महायुद्ध के कारण और उसके बाद ग्राम की उन्नति पर जो राज्य ने जोर दिया तथा इस कार्य को सहकारी स्रोत में प्रवाहित किया, इसके कुछ कारण हैं :

(४) ग्रामों की आर्थिक उन्नति तथा कृषकों को धन की सहायता

देने में सहकारिता ने बड़ा उत्तरदायित्व ले रखा है। सहयोग के विकास, विधान, महाजनों के कारोबार रोकने और ग़ैर जिम्मेदारी समाप्त करने से ऋण-सम्बन्धी सभाओं में बड़ी उन्नति हुई है। अब सहकारिता अपवाद से नियम बन रही है। उद्योग में, यातायात में और क्रय-विक्रय में ये सब सभाएं काफी काम कर रही हैं। हर एक राज्य अपने-अपने क्षेत्र में अपनी आवश्यकता के अनुसार सहकारिता के कामों पर जोर दे रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसी एक जागृति आ गई है कि इस प्रकार से तथा ऐसी व्यापारिक संस्थाओं द्वारा काम किया जायगा जो स्थान और समय के अनुसार अधिक उपयोगी हों, न कि परम्परागत संयुक्त पूंजी कम्पनियों द्वारा। जिसकी आवश्यकता है तथा जो सहकारी संगठन उपलब्ध कराता है, वह जनता की आवश्यकतानुसार एक सादी संस्था और इसीलिए वह अधिक ग्राह्य है।

(५) हमने इस रिपोर्ट में कई स्थानों पर सहयोग से काम करने का संकेत किया है। खासकर आर्थिक दशा में, जैसा कि कृषि, मण्डी, घरेलू उद्योगों और देशीय व्यापार में, कि जो हमारी योजना के सबसे आवश्यक अंग हैं। जनतन्त्री योजना में आपसी लाभ और सामाजिक ध्येय-प्राप्ति के लिए सहकारिता एक आवश्यक शक्ति होनी चाहिए और पंचवर्षीय योजना में इसका हर एक स्थान पर बड़ा काम होगा। योजना का यह ध्येय है कि देश की आर्थिक दशा व्यक्तिगत से सामूहिक विचारधारा में बदली जाय तो इसकी सफलता इस बात से जाननी चाहिए कि यह योजनाएं सहकारी ढंग से कितनी चलती हैं? योजना-समिति ने राज्य तथा केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक और सहकारी कांग्रेस की सलाह से यह निश्चय किया है कि इस आन्दोलन का विकास करके उसे विस्तृत किया जाय और उन सब भागों तथा अंगों में इसका प्रयोग किया जाय जहां के लिए यह उपयुक्त समझा जाय।

सहकारिता और पंचायतों द्वारा विकास

(६) हम यह चाहते हैं कि हमारी योजना के कृषि-सम्बन्धी भाग में

हर एक गांव से सामूहिक तौर पर सजग सम्पर्क कायम किया जाय और ऐसे साधन बताये जायं जिनसे उपज बढ़े और उनकी उन्नति को ध्यान में रखा जाय। लोगों का अपनी इच्छा-अनुसार इस काम में लगना ही योजना की सफलता होगी। यद्यपि हम सारे देश के लोगों में उत्साह देख रहे हैं फिर भी हमको ग्रामों के लिए एक ऐसे संगठन की आवश्यकता सदा रहेगी। पीछे कुछ राज्यों ने पंचायतें स्थापित की थी, जो उन ग्रामों की उन्नति और ग्रामों के सामूहिक विकास में भाग लेती थी। ग्रामों में पंचायतों का सबसे बड़ा काम है। क्योंकि यह लोगों की सब प्रकार की भलाई के लिए बनी होती है। इसलिए उनका स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। इनके द्वारा बहुत से काम हो सकते हैं। जैसे, उपज का बढ़ाया जाना, खेती के लिए सरकारी साधनों का उपयोग करना, सड़कें, कुएं, तालाब आदि बनाना और स्वयं ग्राम की उन्नति के कार्य करना और उन आर्थिक और सामाजिक सुधारों को लाने की प्रेरणा करना, जो सरकार ने विधान द्वारा प्रसारित किये हैं। ऐसे सब काम पंचायतों द्वारा किये जा सकते है।

(७) दूसरी ओर व्यक्तिगत आर्थिक उन्नति करने में जहां केवल आम लोगों की ही दिलचस्पी प्राप्त नहीं करनी होती बल्कि जहां विशेष रूप से व्यक्तिगत सदस्यों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता होती है, इस संगठन की आवश्यकता होती है। जैसे कि नई जमीनों को काश्त में लाने, कृषि के अच्छे साधन जुटाने और ग्राम के लोगों को उपज ठीक ढंग से सुधारने के काम सहकारी-सभाओं द्वारा किये जायं। सहकारी सभाएं ऐसा काम करेंगी जिससे काम पर कम खर्च हो और काम अच्छा हो। वह इसलिए काम नहीं करेंगी कि खूब लाभ हो; इसलिए कि वह मेलजोल से काम करें और जनतन्त्रीय योजना में सहायता दें। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि सहकारी सभाओं का सम्बन्ध ग्राम-पंचायतों से हो। यह ठीक है कि उनके अपने-अपने काम पृथक् होंगे, फिर भी यह दोनों संस्थाएं आपसी मेल-जोल से ग्रामों की उन्नति के लिए इस प्रकार की जनतन्त्री योजनाएं बना सकती हैं। इसके लिए एक-दूसरे में प्रतिनिधि भेज कर तथा उनमें समितियां बना कर

काम कर सकती हैं। इसलिए हम यह सलाह देते हैं कि इस योजना को चलाने के लिए जिस तरह संस्थात्मक सुधार की आवश्यकता है उसी प्रकार ठीक-ठीक स्थान पर पंचायत और सहकारिता पर भी जोर देना चाहिए ।

बहूद्देश्यी तथा ऋण-सम्बन्धी सभाएं

(८) सब राज्य इस बात से परिचित हैं कि ग्रामों की व्यवस्था के पुनस्संगठन में सहकारिता का क्या स्थान है ? ग्रामों में, जैसा कि सहकारी सभाएं काम करती हैं, बहूद्देश्यी सभाओं ने ठीक समय पर बड़े महत्व का स्थान प्राप्त कर लिया है। यह अब पता चल गया है कि प्रारंभिक आवश्यकताओं को पूर्णतया ऋण और उपज-विक्रय से पृथंक तथा भेदपूर्ण समझना बनावटी है। यह अब सबको स्वीकार है कि आगे के लिए हर गांव में एक बहूद्देश्यी सभा बनाई जाय, जिसमें लोगों की बहु-मुखी आवश्यकताएं पूरी होंगी। देश के कुछ भागों में ऐसा हो रहा है कि ऋण-सम्बन्धी सभाओं को बहूद्देश्यी सभाओं में बदला जाय। अब जोर इस बात पर दिया जाता है कि ग्रामों की हर ओर से उन्नति की जाय। भारतवर्ष के ग्रामों में ये सभाएं बड़ा महत्व का काम करती रहेंगी। वस्तुतः ग्रामों की सभाएं इस ऋण-सम्बन्धी संगठन में जितना काम कर सकती है उसको कभी भी अधिक अनुमानित नहीं किया जा सकता ।

(९) अभी हाल में ही कृषि में आय की बड़ी वृद्धि हुई है और बहुत-सी उन्नति, जो पंचवर्षीय योजना द्वारा होगी, इसको और ताकतवर बना देगी। एक ओर जहां ग्रामों में खूब रकम व्यय की जायगी, वहां यह देखना भी आवश्यक होगा कि यह राशि लेनदेन व ऋण-सम्बन्धी संगठन से बाहर न जाय। यह काम सहकारी सभा सबसे अच्छा कर सकती है। दूसरे शब्दों में ग्रामीण जनता का रुपया ऋण-सम्बन्धी संगठनों में घूमता रहना चाहिए। ऐसी सभाएं संगठित करके उनको रुपया दिया जाना चाहिए ।

(१०) भूतकाल में यह सभाएं केन्द्रीय संस्थाओं से, जो शहरों में होती

थीं, ऋण लिया करती थीं और इस प्रकार वहां शहरी लोगों के धन का प्रयोग होता था। इन बातों को ध्यान में रखकर हर एक राज्य में शिखरीय (apex) बैंक खोलना आवश्यक हो जाता है। इनमें से कुछ बैंक तो केवल शहरों ही में काम करते हैं और उनका काम केवल व्यापारिक होता है। पहले ये बैंक गावों को न चाहने वालों द्वारा ही चलाये जाते थे; परन्तु बाद में जमीदार सभाओं द्वारा कुछ एेसे बैंक चलाये जाने आरम्भ हुए,लेकिन अब तो राज्यों ने शिखरीय बैंकों को सहायता देनी शुरू कर दी है। रिजर्व बैंक भी, जो कृषि-सम्बन्धी ऋण देने का दायित्व रखता है, इसमें काम करने लग पड़ा है और अब वह इन केन्द्रीय बैंकों को धन देने में बड़ी दिलचस्पी लेता है। हमने भी यह सुझाव दिया है कि योजना के अन्त में रिजर्व बैंक व केन्द्रीय सरकार हर वर्ष १०० करोड़ रुपया अल्पाथिक वाली ऋण की योजनाओं के लिए दे। यदि हम चाहते है कि धन का संगठन ठीक तौर पर संचालित किया जाय तो आवश्यक है कि लेनदेन के क्रम को ग्राम से लेकर आगे तक संगठित किया जाय।

क्रय और विक्रय सम्बन्धी सभाएं

(११) कृषक की आवश्यकताओं की खरीद और उसकी उपज की बिक्री गांव का सबसे बड़ा व्यवसाय है और उचित ढंग की सामाजिक तथा आर्थिक दशा के लिए महत्वपूर्ण कार्य है। इस विनिमय में ठीक व्यवहार न मिलने के कारण उसे संकट उठाना पड़ता है। इसलिए सहकारी क्रय और विक्रय की सभाएं अत्यावश्यक हैं। इससे धन तथा क्रय-विक्रय की सभाओं को सारे देश में संगठित करना न केवल इस योजना की सफलता परन्तु ग्रामों की उन्नति का सबसे बड़ा साधन है।

(१२) योजना का ध्येय यह है कि कृषि की उपज अधिक हो। इसमें सहकारिता का बड़ा भारी हिस्सा है। सहकारिता प्रसार के काम को अधिक बढ़ा सकती है और कृषक को जो अन्य सहायता चाहिए, वह सब सहकारी-सभा पूरा कर सकती है। जैसे, अच्छे बीज, अच्छे कृषि-उपकरण

तथा खाद आदि । इस प्रकार की सभी वस्तुएं जुटाने में सभा मदद कर सकती है ।

(१३) देश के बहुत से भागों में कृषि-उन्नति के लिए भूमि की इकाई में वृद्धि करनी है । यहां भी सहकारी खेती बड़े महत्व का साधन है । किसी को मालिक के हक से न हटाकर तथा उद्योग में प्रोत्साहन को कम किये बिना सहकारी खेती में वह सब काम हो सकते हैं जो एक बड़ी इकाई की खेती में होते हैं । जिस समाज में सहकारिता अन्यान्य दिशाओं में काफी हद तक उन्नति कर गई है, वहां पर सहकारी खेती का प्रचार करना उस स्थान की अपेक्षा आसान है, जहां सहकारिता का अभी अधिक प्रचार नहीं है । यह ठीक है कि सहकारिता के प्रचार में मतभेद का झगड़ा न हो, फिर भी हम यह सुझाव देते हैं कि यदि किसी गांव के अधिकांश भू-स्वामी मानते हों कि कृषि सहकारिता के सिद्धांत पर की जाय तो सारे ग्राम के लिए कानून द्वारा सहकारी सभा बना दी जाय और राज्य को चाहिए कि इसको प्रोत्साहन दे तथा उसको सफल बनाने के लिए युक्त कार्य करे । कुछ व्यक्तियों को यदि ऐसा करना हो तो उनमें सहकारिता के भाव होने चाहिएं । अतः सहकारी-कृषि के विकसित होने में अभी कुछ समय लगेगा । यदि पहले पांच वर्ष में हम कुछ राज्यों में ऐसा कर सके तो अगले पांच साल में हम और भी उन्नति कर सकेंगे ।

सहकारिता और सामूहिक योजनाएं

(१४) बहुत से प्रदेशों में ग्रामों की उन्नति के लिए सामूहिक योजनाएं शुरू की गई हैं । इसके ध्येय और काम के बारे में अन्यत्र उल्लेख किया है । हमने सुझाव दिया है कि हर एक सामूहिक योजना में सहकारिता के सिद्धांतों से काम लिया जाय । सामूहिक योजना की सफलता इसीसे आंकी जायगी कि लोग अपने कामों के लिए स्वयं कितना काम करते हैं । बाहर का नेतृत्व और राज्य सहायता करेगा; परन्तु फिर भी अधिक काम लोगों से ही सम्पादित होगा । यह विश्वास करना कठिन है कि उनके व्यापार तथा

सामूहिक कार्यों के संगठन के बिना, उनमें किस तरह सामूहिक योजनाओं का ध्येय पूरा हो सकता है। अतः एक विशाल सहकारी ढांचा बनाने पर विचार करना ही पड़ेगा। इसलिए हर ऐसे क्षेत्र में सहकारिता के विकास का एक कार्यक्रम बनाना होगा और लोगों को इस कार्य में शिक्षित करना होगा। यही एक सफल विधि लोगों से स्वेच्छापूर्वक सहायता प्राप्त करने की होगी।

(१५) यद्यपि यह संभव तथा वांछित है कि विशेष लाभ, जो अन्य स्थान पर प्रस्तावित है, सहकारी सभाओं के सदस्यों को प्राप्त कराये जायं, परन्तु योजना सम्पन्न आर्थिक संगठन के उद्योग-सम्बन्धी ढांचे से इनके युक्त स्थान की निर्भरता उनकी अपनी योग्यता पर होगी। हां, कोई ऐसा काम नहीं होना चाहिए जिससे सहकारी-सभाओं तथा उनके सदस्यों के आत्मविश्वास को क्षति पहुंचे।

उद्योग में सहकारिता

(१६) ग्रामों में केवल खेती से ही सबको काम नहीं मिल सकता। योजना सिंचाई, भूमि-संरक्षण और कृषि-योग्य अधिकाधिक भूमि लाने में सहायक हो सकती है; परन्तु प्रकृति के कुछ ऐसे प्रतिबन्ध है कि कृषक को अपने अवकाश के समय के लिए कुछ और काम ढूंढ़ना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कारीगर भी हैं जो संगठित तथा बड़े-बड़े कारखानों का मुकाबला न कर सकने के कारण अपनी आजीविका जुटाने तक के लिए भूमि पर निर्भर रहते हैं। गांवों और घरेलू उद्योग की चर्चा में इनकी समस्याओं पर सुझाव दिये गए हैं और वहां पर इस सम्बन्ध में ग्रामीण जनता की समस्या को हल करने के सुझाव दिए गये हैं एवं ऐसे कार्यकर्ताओं को सहकारी सभाओं में संगठित करने के लाभों पर भी प्रकाश डाला गया है। अब जनता को सहकारी कृषि के प्रयोगों से पर्याप्त परिचय हुआ है; परन्तु उद्योग में सहकारिता अभी प्रारंभिकावस्था में है। इसका काम अभी इतने मुकाबले में रहा है कि कई बार उसकी सफलता संदिग्ध प्रतीत होने लगती है।

अभी तक धन तथा क्रय-विक्रय के काम का कोई भी अनुभव इन्हें नहीं है। इसलिए उद्योग में सहकारिता का भविष्य इतना उज्ज्वल नहीं दीखता, जितना कृषि में। जैसा हमने अन्यत्र लिखा है कि घरेलू तथा छोटे उद्योगों के लिए ऐसा काम करने का स्थान निश्चित होना चाहिए ताकि उसे बड़े उद्योग हड़प न कर जायं। यह लक्ष्य हमें ठीक तरह से फिर अधिक अनुभव से हासिल करने होंगे।

विद्युत-शक्ति, उपकरण, कच्चे माल के क्रय-विक्रय तथा विशेष ज्ञान में उनको सहकारी एजेंसियां सहायता दें। यहां हमें यह नहीं बताना है कि ग्राम से लेकर राज्य तक यह सभाएं कैसे काम करेंगी। हम यह समझते हैं कि हर एक प्रदेश के तजुर्बे से कुछ काल के बाद संघ के प्रचार की संस्था विकसित हो जायगी। परन्तु धन की आवश्यकता के बारे में यह जोर देना चाहिए कि इतना धन जुटाया जाय जितना कि औद्योगिक सहकारी सभाओं को अपने उत्पादन लक्ष्य-पूर्ति के लिए आवश्यक हो। अब धन देने के जो भी स्रोत उपलब्ध हैं क्या वह उनकी आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं? यदि कर सकते हैं तो किस सीमा तक? हर राज्य या रिजर्व बैंक को इसके बारे में पड़ताल करनी पड़ेगी। राज्य सरकार इसके लिए औद्योगिक कारपोरेशन स्थापित कर रही है ताकि छोटे घरेलू उद्योगों को धन की सहायता की जा सके। योजना में १५ करोड़ रुपया केवल इन छोटे घरेलू उद्योगों के लिए रखा गया है। हमने यह सुझाव दिया है कि धन की ऐसी सहायता उन उद्योगों को दी जाय जो सहकारिता के ढंग पर आयोजित हों। जब कारीगरों की औद्योगिक सहकारी-सभाएं और दूसरी फैक्टरियां इस ढंग पर चलाई जायंगी और ग्राम का आर्थिक काम ऐसे सहकारी-आन्दोलन में आ जायगा, जैसा हमने पहले बताया है तो इस प्रकार की उन्नति जन-तन्त्रात्मक योजना के अनुकूल होगी और बाद में आर्थिक उन्नति की योजनाओं में काफी सहायता मिलेगी।

(१७) जब ग्रामों में इस आन्दोलन की बड़ी चर्चा हो रही है, जहां कृषि प्रधान-व्यवसाय है तो हमें शहरों में भी इसका प्रचार ठीक ढंग से करना

आवश्यक हो जाता है। शहरों में भी कुछ ऐसे छोटे-छोटे कारीगर हैं जो जमाने की मांगों के साथ चलते हुए अपने-आपको संगठित नहीं कर सकते। सामाजिक तथा आर्थिक कारणों के अधीन यह इष्ट है कि ये लोग अपने-आपको संगठित करके नये यंत्रों का प्रयोग कर सकें। छोटे उद्योगों में विद्युत्-शक्ति का प्रयोग करने का विशेष ढंग जब यह लोग सीख जायंगे तो देश के औद्योगीकरण में बड़े सहायक होंगे। हमारा अनुरोध है कि उद्योग विकेंद्रित होना चाहिए। यह सब इस बात पर निर्भर होगा कि कारीगर अपने-आपको किस प्रकार संगठित कर सकते हैं।

(१८) शहरों में अधिक जोर उपभोक्ता सहकारी भंडारों पर दिया जाना चाहिए। हम यह देखते हैं कि मद्रास के अतिरित और किसी स्थान में ऐसी उपभोक्ता-सभाएं नहीं हैं। राशनिंग और नियंत्रित सप्लाई के कारण कुछ उपभोक्ता सभाएं बनी हैं और वह इन सभाओं से अधिक लाभ पहुंचाने में असफल रही हैं। इन उपभोक्ता-समितियों की सफलता केवल इस बात में है कि सहयोगी वर्ग खुद इनकी सफलता का प्रचार करे और सरकार को भी ऐसा ध्यान रखना चाहिए कि इन उपभोक्ता समितियों के अधिकारों की अवहेलना न हो। हमारे खयाल में जहां भी वितरण का प्रश्न है वहां वितरण की योजना इस प्रकार अधिक सफल हो सकती है।

अधिक अच्छे कार्यकर्त्ता

(१९) अन्तिम रूप में सहकारी समितियों की सफलता उनके अपने कार्यों के, चाहे वे उत्पादन, वित्त, क्रय-विक्रय और वितरण या निर्माण के बारे में हों, संचालन की योग्यता तथा सदस्यों और समाज की सन्तुष्टि पर निर्भर है।

प्राय: सहकारी समितियों का संगठन तथा प्रबंध उन लोगों के द्वारा होता है जिन में अनुभव तथा योग्यता की कमी होती है। कई एक सहकारी समितियों और देश में इस आन्दोलन की असफलता का यही एक कारण है। अत: सहकारी समितियों को चाहिए कि वे योग्य व्यक्तियों की भर्त्ती करें और

मौजूदा कार्यकर्ताओं को अच्छी ट्रेनिंग दिलायें।

(२०) आम तौर पर सब राज्यों में सहकारी विभाग हैं। और अब तक इनका काम केवल निरीक्षण, पड़ताल तथा प्रामाणीकरण तक सीमित रहा है। परन्तु अब जब कि सहकारिता आर्थिक योजना के लिए महत्व-पूर्ण है, इसके लिए अधिकारियों को केवल आडिटर और इंस्पैक्टर ही नहीं बनना है बल्कि उन्हें सहकारिता का महत्व जनता को समझाना भी है।

भविष्य की नीति

(२१) भूतकाल में कुछ ऐसी शिकायतें रही हैं कि राज्य-सरकारें सहकारिता को आगे ले जाने के काम में अपेक्षया अच्छा बर्ताव नहीं करतीं। कइयों की यह धारणा थी कि सहकारी विभाग को ही सहकारिता का विकास करना है। यह बताया जा चुका है कि अनेक प्रकार का सहकारी कार्य अनेक विभागों पर निर्भर है। इसलिए यदि प्रत्येक विभाग तथा मंत्रालय इस आन्दोलन को आगे ले जाने का प्रयत्न न करे तो इससे अच्छा परिणाम नहीं निकल सकता, जैसे निर्माण विभाग और सिंचाई के विभाग हर वर्ष बहुत से रुपये खर्च करते हैं। एक-दो राज्यों को छोड़कर यह सब काम ठेके-दारों से कराया जाता है। हमारा यह सुझाव है कि ये काम सहकारिता से कराये जायं। सहकारिता को अकारण प्रोत्साहन देने का हमारा प्रयोजन नहीं है, परन्तु इन्हें संगठित तथा पुष्ट बनाने के लिए हरेक संभव सहायता दी जानी चाहिए।

कृषि के लिए धन

भारत में कृषि-उत्पादन करोड़ों छोटे किसानों पर निर्भर है। इन्हीं किसानों की निपुणता तथा कार्यशक्ति में वृद्धि होने से भारत का उत्पादन बढ़ेगा। धन की कमी से तथा उधार मिलने का प्रबंध न होने से उनमें से अधिकांश न अच्छे बीज ले सकते हैं और न अच्छी खाद तथा वैज्ञानिक

साधन प्राप्त कर सकते हैं। उनमें से कुछ तो कुओं और तालाबों तक की मरम्मत नहीं करवा पाते। अतः किसानों के लिए समय पर और उचित दरों पर कर्ज का प्रबंध हमारी योजना का एक अविछिन्न अंग है। इस कार्य के लिए जितनी भी एजेंसियां हैं, उन सबका समन्वय करके उन्हें इस कार्य में जुटाया जायगा।

किसान को तीन तरह के ऋणों की आवश्यकता होती है :

(क) छोटी अवधि वाले, (ख) मध्यम अवधि वाले, तथा (ग) लम्बी अवधि वाले। छोटी अवधिवाले कर्ज बीज, खाद और उर्वरक खरीदने तथा मजदूरों को मजदूरी चुकाने को लिये जाते हैं, और फसल कटने के बाद चुकाये जाते हैं। मध्यम अवधि वाले कर्ज कुआं खोदने, बैल खरीदने, नल लगाने तथा नए औजार लेने के लिए दिये जाते हैं और किस्तों में ३ से ५ वर्ष तक चुकाये जाते हैं। जो कर्ज १० से २० वर्षों में चुकाए जाते हैं वे लम्बी अवधि के ह। कर्ज चुकाने, बड़ी मशीनें खरीदने अथवा नई जमीन लेने के लिए ये कर्ज लिये जाते हैं।

किस तरह के कर्ज के लिए कितने रुपयों की आवश्यकता है इसका अंदाज लगा सकना कठिन है। फिर भी यह स्पष्ट है कि इस विशाल कार्य के लिए जितने धन की आवश्यकता है उसका प्रबंध हो सकना बहुत कठिन है।

धन के प्रबंध के साधन

किसानों को निम्न साधनों से धन प्राप्त होता है :—

१. निजी एजेंसियों (क) साहूकार और जमींदार (ख) व्यापारिक बैंक।

२. सरकारी या अर्ध सरकारी एजेंसियां : (क) सरकार (ख) सहकारी समितियां।

कुछ समय पहले तक साहूकार और जमींदार सबसे बड़े साधन रहे हैं। कर्जे हल्के करने वाले कानूनों ने उनकी संख्या में बहुत कमी कर दी है और अब संस्थाओं द्वारा कर्ज देने की पद्धति जारी करने की आवश्यकता

है। व्यक्तिगत क्षेत्रों के क्षीण हो जाने पर सरकार, जो पहले केवल कष्टों के समय सहायता देने का काम करती थी, अब कृषि-विकास के लिए भी धन का प्रबंध करने लगी है। उदाहरण के लिए १९४९-५० में तकावी ऋण की मद में लगभग १५ करोड़ रुपया बांटा गया, जब कि १९३८-३९ में केवल एक करोड़ रुपया बांटा गया था।

देहात को सहकारी समितियों से भी काफी परिमाण में धन प्राप्त होता है। देश भर में आज १,४२,००० कृषि सहकारी-समितियां हैं, जिन्होंने १९४५-५० में २८ करोड़ रुपया किसानों को उधार दिया, जब कि १९३८-३९ में यह राशि केवल ७ करोड़ रु. थी। इस राशि का दो तिहाई भाग बंबई और मद्रास में काम आया और ५ वें भाग से कुछ कम उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश और पंजाब में। अन्य क्षेत्रों में इस आन्दोलन को जोरदार बनाने की आवश्यकता है।

सहकारी समितियों द्वारा ऋण

बंबई, मद्रास तथा कुछ अन्य राज्यों के अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि कृषि के लिए धन जुटाने का सबसे अच्छा साधन सहकारी समितियां हैं। समितियों को अपने सदस्यों के स्वभाव और आचार का ठीक ज्ञान रहता है, और वे रुपया उधार देते हुए उन सब बातों तथा जमानत का ध्यान कर लेती हैं। वे इस बात पर भी निगरानी रख सकती हैं कि उधार दिया हुआ ठीक काम पर खर्च हो रहा है या नहीं। कर्ज वसूल करने के संबंध में भी उनकी स्थिति इस कारण अधिक अच्छी होती है कि वे जान-बूझकर रुपया न चुकानेवाले व्यक्ति पर जनमत का दबाव डाल सकती हैं। स्थानीय बचत-संग्रह के कार्य भी वे अधिक अच्छी तरह कर सकती हैं।

सहकारी समितियों के धन का बड़ा भाग शेयरों, कर्जों या रक्षित धन से आता है, अतः उन पर भी बैंकों के नियम लागू होते हैं। नुकसान से बचने के लिए प्रायः वे उन्हीं को उधार देती हैं, जो जमानत दे सकते हैं। यह अभीष्ट है कि वे उन किसानों को भी उधार देने का प्रयत्न करें, जिन में

कर्ज न चुका सकने की क्षमता है। इसमें कुछ-न-कुछ खतरा तो अवश्य होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि उस खतरे में होने वाले नुकसान को पूरा करने का उत्तरदायित्व सरकार अपने ऊपर ले ले। बंबई सरकार ने इस सिद्धात को स्वीकार कर लिया है और अन्य राज्यों को उसका अनुसरण करना चाहिए। अपेक्षाकृत अल्पविकसित राज्यों को भी इस पद्धति का उपयोग करना चाहिए।

इस तरह यदि सहकारी समितियों को अपना कार्य-क्षेत्र बढाना होगा तो उनकी सदस्य-संख्या भी बढानी पडेगी और उनकी कार्यपद्धति मे सुधार करना होगा। सन् १९४६ में सहकारिता आयोजन समिति ने यह सिफारिश की थी कि आगामी २० वर्षों मे हमें पचास प्रतिशत गावो और ३० प्रतिशत देहानी आबादी को सहकारिता के क्षेत्र में ले आना चाहिए। प्रयत्न करना चाहिए कि १९५५-५६ तक यह लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाय।

सहकारी समितियो की सफलता बहुत अशो तक उनके कार्यकर्त्ताओ पर निर्भर होगी। हाल ही में रिजर्व बैंक ने पूना में इन समितियो के उच्च कार्यकर्त्ताओ के प्रशिक्षण का कोर्स जारी किया था। अन्य स्थानो पर भी यह प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए कमीशन ने १० लाख रुपया रखा है और उसे ऊची प्राथमिकता दी गई है।

इन सहकारी समितियो को जब तक जनता की बचत यथेष्ट मात्रा में प्राप्त नही होने लगती, तब तक उन्हे रिजर्व बैंक से आर्थिक और टेकनिकल सहायता की आवश्यकता रहेगी। रियायती कर्जों की योजना के अधीन आजकल भी रिजर्व बैंक इन समितियो को प्रादेशिक सहकारी बैंकों के द्वारा कृषि-कार्यों के लिए तथा पैदावार की बिक्री के लिए बैंक की प्रचलित दर से दो प्रतिशत कम दर पर उधार देता है। इनके लिए कर्ज चुकाने की अवधि भी ९ महीने के बजाय १५ महीने रखी जाती है। इन रियायतो का परिणाम यह हुआ है कि सन् १९५१-५२ मे सहकारी बैंको ने रिजर्व बैंक से १२½ करोड़ रुपये का कर्ज लिया, जब कि १९४६-४७ मे यह कर्ज केवल १.५

लाख था । अभी तक बंबई और मद्रास ही इस रियायत से विशेष लाभ उठा रहे हैं । तथापि रिंजर्व बैंक अब अन्य राज्यों के सुस्थिर सहकारिता आन्दोलनों को भी स्वीकृत करने लगा है ।

ज्यों-ज्यों राज्यों में इन संस्थाओं की संख्या बढ़ती जाय, त्यों-त्यों रिजर्व बैंक और सरकार को चाहिए कि वे सहकारी-समितियों को अधिक-से-अधिक सहायता दें । आगामी चार वर्षों में इन संस्थाओं को दिये गए कर्ज की राशि १०० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष तक पहुंच जानी चाहिए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक राज्य में कृषि-संबंधी अर्थ-व्यवस्था और सहकारिता के विकास की एक विस्तृत योजना आन्दोलन के नेताओं, रिजर्व बैंक तथा केंद्रीय सरकार की राय से तैयार की जानी चाहिए।

मध्यम और लम्बी अवधि के कर्ज

जहां छोटी अवधि के कर्ज से किसान की तात्कालिक आवश्यकताएं से पूरी होती हैं, वहां मध्यम अवधि के कर्ज से वह अपनी खेती-बाड़ी का क्षेत्र और उपज बढ़ा सकता है । इसलिए मध्यम अवधि के कर्ज को विशेष रूप से बढ़ाने की आवश्यकता है ।

अभी तक रिजर्व बैंक सहकारी समितियों को मध्यम अवधि के कर्जों के लिए कोई सहायता नहीं देता । हाल ही में बैंक ने यह स्वीकार किया है कि वह ५ करोड़ रुपये तक की राशि मध्यम अवधि के कर्जों के लिए देगा और अब इसे संभव बनाने के लिए रिजर्व बैंक कानून में संशोधन किया जा रहा है। यह देखते हुए कि उत्पादन की वृद्धि तथा सहयोग समितियों के कार्य में फैलाव की बहुत गुंजाइयश है, यह रकम पर्याप्त सिद्ध न होगी। अतः कमीशन ने इस कार्य के लिए ५ करोड़ की रकम रखी है, जो अगले ३ वर्षों में क्रमशः दी जायगी। इसके अतिरिक्त प्रबंध तथा सहकारी समितियों के प्रयत्न से यह आशा की जा सकती है कि योजना की समाप्ति तक प्रतिवर्ष २५ करोड़ रुपया मध्यम अवधि के कर्जों के लिए उपलब्ध हो सकेगा ।

सन् १९४९-५० में २८३ भूमि गिरवी बैंकों ने लगभग एक करोड़ रुपया २० वर्ष तक की लम्बी अवधि के कर्जों के रूप में दिया था। ये बैंक मद्रास, बंबई, मैसूर और मध्य प्रदेश में हैं। अन्य राज्यों में भी इनकी स्थापना की जा रही है। अभी तक ये बैंक प्रायः पुराने कर्ज चुकाने के लिए ही लम्बी अवधि का नया कर्ज देते रहे हैं। भविष्य में ये कर्ज उपज बढ़ाने के लिए देने चाहिएं, ताकि उस बढ़ी हुई आय से पुराने कर्ज भी चुकाये जा सकें। भूमि-गिरवी बैंकों को अब उत्पादन बढ़ाने के इच्छुक किसानों को सहायता देनी चाहिए।

हाल ही में कुछ केंद्रीय बैंकों को लम्बी अवधि के लिए कम दर पर कर्ज देने में असुविधा प्रतीत हुई, यद्यपि उनके ऋणपत्रों (Debentures) का उत्तरदायित्व सरकार ने अपने ऊपर ले लिया था। परिणाम यह प्रतीत होता है कि लम्बी अवधि के कर्जों के लिए भूमि गिरवी बैंक पर्याप्त सिद्ध न होंगे। यह बात योजना के उद्देश्यों के अनुकूल न होगी अतः कमीशन ने सहकारी समितियों के साधनों के अतिरिक्त ५ करोड़ रुपया लम्बी अवधि के कर्जों के लिए रखा है।

इस राशि तथा मध्यम अवधि के कर्जों के लिए रक्षित अन्य राशियों के बंटवारे के लिए कमीशन ने ये सिफारिशें की हैं :—

(१) इन कर्जों को कृषि-उत्पादन बढ़ाने के कार्यक्रमों के साथ संबद्ध किया जाय।

(२) उन क्षेत्रों तथा वर्गों को तरजीह दी जाय, जिनको सहकारी समितियों से ऋण नहीं मिल रहा।

(३) कर्जों का बंटवारा सहकारी संगठनों द्वारा होना चाहिए। जहां सहकारी संगठन न हों, वहां उनका बंटवारा ऐसे संगठनों द्वारा होना चाहिए, जो क्रमशः सहकारी संगठनों के रूप में विकसित हो सकें या उनमें मिल सकें।

(४) अन्य चीजों के साथ दीर्घकालीन कृषि ऋण भूमि-गिरवी बैंकों द्वारा जारी किये गए ऋणपत्र (Debentures) खरीद कर भी लिया

जा सकता है।

(५) इन सिफारिशों की पूर्त्ति के लिए भारत सरकार रिजर्व बैंक तथा अन्य संबद्ध संस्थाओं की सलाह से एक विस्तृत योजना तैयार करे।

गांवों का संगठन विकास का आधार तो होगा ही, परन्तु ग्राम-उद्योग के विकास के लिए केंद्रीय व राज्य सरकारों से निर्देशन की आवश्यकता इससे भी अधिक जरूरी है। ग्राम उद्योग संबंधी कार्यक्रम को चालू करने की जिम्मेदारी मुख्यत: राज्य-सरकारों पर ही होनी चाहिए। परन्तु वह सीमाएं जिन के भीतर रह कर वह किसी विशेष ग्रामोद्योग-संबंधी कार्यक्रम को कार्यान्वित कर सकें, केंद्रीय सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली नीति के आधार पर निश्चित की जानी चाहिएं। इसके लिए यह आवश्यक है कि केंद्रीय सरकार के पास एक ऐसी संस्था हो, जो ग्राम-उद्योग की समस्याओं पर विचार करे व राज्य सरकारों, उत्पादक संस्थाओं व ग्राम-सहकारी-समितियों को काम करने के लिए अनुकूल वातावरण स्थापित करने में सहायता दे। बेरोजगारी की बढ़ती हुई समस्या को ध्यान में रखते हुए यह संस्था ग्रामोद्योग के लिए वित्तीय सहायता की सिफारिशें करे ताकि अधिकाधिक लोगों को काम-धंधा मिल सके।

पूंजी

जहां सहकारी-आन्दोलन को उन्नति की चरम-सीमा तक पहुंचाने का काम शीघ्र ही संपूर्ण करना है, वहां निकट भविष्य में ग्रामोद्योग को पुनर्जीवित करने का भार भी केंद्रीय व राज्य सरकारों पर है। राज्यों में योजना के अन्तर्गत घरेलू व छोटे-छोटे उद्योग-धंधों के लिए १२ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है, जो कि योजना के आरम्भ होने से पहले इसी मद पर किये जाने वाले खर्च से दुगनी है। योजना के कार्यक्रमानुसार प्रगति प्राप्त करने के लिए केंद्रीय सरकार ने राज्य सरकारों की सहायता के लिए अपनी

योजना मे भी १५ करोड रुपये की व्यवस्था कर दी है। ग्राम व छोटे-मोटे उद्योग-धंधों के सचालन मे पूजी की सभवत: कोई बडी रुकावट नही है। सरकार व दस्तकार दोनो को चाहिए कि वे योजनानुसार ऐसे कार्य-क्षेत्रों को निश्चित करे, जहा छोटे उद्योगो को लगातार काम मिल सके और आने वाली कठिन समस्याओ को भी वे सुलझा सके।

रहने के मकान

हमारा विचार है कि मध्यम व अन्य अल्प आय वाले वर्गों की, जिनको कारखानों में काम करने वाले मजदूरो की भाति ही रुपये की आवश्यकता होती है, भवन-निर्माण सहकारी समितियों को ऋण देने की व्यवस्था करनी चाहिए। हमारा सुझाव है कि गृहनिर्माण सहकारी संस्थाओं के लिए केंद्रीय सरकार राज्य सरकारो को ऋण-देवे, जो राज्य सहकारी-सघ द्वारा अपनी प्रदेशीय सहकारी सस्थाओ को रुपया प्रदान करेंगी। विचार करने योग्य, मुख्य बात यह है कि ब्याज की उस दर का, जो केंद्रीय सरकार राज्य-सरकारो से लेती है और उस दर का, जो गृह-निर्माण सहकारी संस्थाओं को देना पड़ता है, कुल अन्तर आधे प्रतिशत से अधिक नही होना चाहिए। हम गृह-निर्माण सहकारी-संस्थाओं को इसलिए महत्व देते हैं कि इनसे गृह-निर्माण मे सहायता होगी और इनसे खर्च जहा तक भी संभव होगा, कम हो जायगा।

स्वतंत्रता के अनन्तर सहकारिता की प्रगति के कुछ आंकड़े

स्वतन्त्रता के पश्चात सहकारी आन्दोलन में समष्टि रूप से पर्याप्त प्रगति हुई है। इस अध्याय मे इस प्रगति के संबध में व्यौरेवार लिखना संभव नही। परन्तु संलग्न आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि सहकारी समितियों की संख्या मे इतनी वृद्धि नही हुई; परन्तु सदस्य संख्या ९१ लाख रु. से बढ़कर १ करोड़ रु. ३७ लाख हो गई है और भाग धन २२ करोड़ से बढ़ कर ४९

करोड़ रु. हो गया है। इन आंकड़ों से यह प्रकट होता है कि प्रगति की धारा समितियों को पुष्ट तथा इनके क्षेत्र को व्यवस्थित बनाने की ओर प्रवाहित हो रही है। अब समितियों की संख्या की ओर ध्यान इसलिए नहीं दिया जा रहा कि अब बहूद्देश्यी सहकारिता अधिक प्रचलित हो रही है। सहकारी योजना-समिति के प्रस्तावों के अनुसार अब ध्यान इस ओर है कि अधिक-से-अधिक परिवार इस आन्दोलन में शामिल हों और हर सहकारी समिति क्षेत्र, अर्थ, तथा सदस्यों के दृष्टिकोण से पुष्ट तथा प्रगतिशील हों। आगे दिये गए आंकड़ों से सहकारी आन्दोलन की गतिविधि का पर्याप्त पता चल जाता है। जो कोष्टक खाली हैं उनसे संबंधित आंकड़े प्राप्त नहीं हो सके।

तालिका—१ (समस्त सहकारी सभाएं)

वर्ष	सहकारी सभाओं की कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन (रुपयों में)	चालू धन (रुपयों में)
१९४७	१,३९,१६६	९१,००,९०७	२२,३१,३२,०००	१,५६,००,५७,०००
१९४८	१,४९,७६८	१,०१,१७,१२०	२६,८५,४८,०००	१,७१,०६,०९,०००
१९४९	१,६३,८७५	१,२७,०७,०७३	३२,७०,४३,०००	२,१९,४९,१६,०००
१९५०	१,७३,०९४	१,२५,६१,०१६	३७,६९,०३,१८९	२,३३,१०,२८,८३०
१९५१	१,८१,१९९	१,३७,१५,०२०	४३,४५.६७,३९७	२,७५,८५,२३,९२६
१९५२	१,८५,६५०	१,३७,९१,६८७	४९,०८,१८,९५८	३,०६,३३,७७,२४१

तालिका—२ प्रान्तीय बैंक

वर्ष	कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन (रुपयों में)	चालू धन (रुपयों में)
१९४७	—	—	—	—
१९४८	११	१५,०१३	८८,६४,६६३	२८,०५,३६,१२८
१९४९	१२	१५,६११	१,०२,०१,७७७	३१११,५,१७०
१९५०	१४	१८,६१८	१,३४,३३,९३९	३१,४५,४२,४४९
१९५१	१५	२०,९३२	१,५७,९७,५१२	३४,४२,०७,११८
१९५२	१६	२३,२७२	१,८९,९३,३४५	३६,७१,७०,१७४

तालिका—३ (प्रान्तीय ऋणातिरिक्त)

वर्ष	कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन (रुपयों में)	चालू धन राशि (रुपयों में)
१९४७	—	—	—	—
१९४८	—	—	—	—
१९४९	—	—	—	—
१९५०	२२	९,३६४	१७,४०,२४०	२,०९,५६,२३०
१९५१	३५	२०,०६८	३६,६६,२५१०	८,७४,६३,८६५
१९५२	३५	२३,७२५	५४,५४,६९६	७,१८,७३,५४१

तालिका—४ केन्द्रीय बैंक तथा बैंकिग संगठन

वर्ष	कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन (रुपयों में)	चालू धन (रुपयों में)
१९४७	—	—	—	—
१९४८	४६९	१,६७,२२५	२,८३,७५२४	४१,९०,३७,६६२
१९४९	४८४	१,८२,५३२	३,१४,९५,१६१	४८,११,७६,४५१
१९५०	४९८	१,८९,७२२	३,५४,३३,२१२	४९,८७,३४,४१६
१९५१	५०५	२,०७,०७४	४,०३,९२,०४२	५६,३६,७६,७६६
१९५२	५०९	२,३१,३१८	४,३२,१४,४८९	६०,११,३९,८०४

तालिका—५ केन्द्रीय ऋणातिरिक्त

वर्ष	कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन (रुपयों में)	चालू धन (रु.में)
१९४७	—	—	—	—
१९४८	—	—	—	—
१९४९	—	—	—	—
१९५०	२,०९१	१३,३७,७३८	१,६७,९६,८८३	११,२७,६८,७४५
१९५१	२,२०१	१४,५३,१३५	२,०६,०८,०९६	१२,४४,६३,०८२
१९५२	२,३२१	१६,१८,६१९	२,५२,६३,३८१	१५,९९,२३,३१९

तालिका—६ प्राथमिक कृषि समितियां

वर्ष	कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन (रु. में)	चालू धन (रु. में)
१९४७	—	—	—	—
१९४८	१,२५,६०७	६२,१५,५३२	८,०२,०१,६४४	३४,६९,६८,६१५
१९४९	१,३४,८१५	६९,६३,२६५	९,७२,०४,२३४	४५,४०,७३,९५१
१९५०	१,४२,३९४	७७,५८,७०२	११,३८,१४,४२९	४८,३६,२३,७२६
१९५१	१,४९,२७७	८३,१९,१५०	१२,९६,२९,७२९	५७,४९,५९,४२१
१९५२	१,५३,३००	८२,२८,३२२	१३,९५,७४,३१०	६५,३७,४६,१३२

तालिका—७ प्राथमिक कृषि (ऋण)

वर्ष	कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन (रुपयों में)	चालू धन (रुपयों में)
१९४७	—	—	—	—
१९४८	१,०४,३१४	—	—	—
१९४९	१,१२,०५९	—	—	—
१९५०	१,१६,५३४	४८,१७,५४५	७,१६,६७,१०६	३५,२१,७५,४२७
१९५१	१,१५,४६२	५१,५३,९०७	८,३९,९७,४१७	४०,९५,७७,३७५
१९५२	१,१७,०१०	५४,२४,३२१	९,०७,९२,४१४	४६,८२,४५,०८६

तालिका—८ प्राथमिक कृषि (ऋणातिरिक्त)

वर्ष	कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन (रुपयों में)	चालू धन (रुपयों में)
१९४७	—	—	—	—
१९४८	१९,२९३	—	—	—
१९४९	२२,७५६	—	—	—
१९५०	२५,८६०	२९,४१,१५७	४,११,४७,३२३	१३,१४,४८,३२९
१९५१	३३,८१५	३३,६५,२४३	४,५६,३२,३१२	१६,५३,८२,०४६
१९५२	३५,२९०	२८,०४,००१	४,८७,८१,८९६	१८,५५,०१,०४५

तालिका—९ (प्राथमिक कृषि-अतिरिक्त)

वर्ष	कुल संख्या	कुल सदस्य	भाग धन (रुपयों में)	चालू धन (रुपयों में)
१९४७	—	—	—	—
१९४८	२२,९२०	३६,३०,९७०	१४,५२,२८,६६६	६०,७६,८०,८३६
१९४९	२७,८२२	५४,४५,६३२	१८,१६,२३,५२९	८३,७३,३६,२३४
१९५०	२७,२७३	४६,१५,४८४	१८,९३,१०,७९९	७८,३०,९९,०५५
१९५१	२८,३२८	४९,८०,८६०	२१,६०,८९,४४१	९१,९९,७०,६५४
१९५२	२८,६११	५३,४९,५८७	२३,९८,३१,३७३	१,०३,१९,१६,७०९

तालिका—१० प्राथमिक कृषि अतिरिक्त ऋण सभाएं

वर्ष	कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन (रुपयों में)	चालू धन (रुपयों में)
१९४७	—	—	—	—
१९४८	६,८५६	—	—	—
१९४९	७,०२९	—	—	—
१९५०	७,५३४	२०,६५,९९०	१०,८६,०६,०५१	५१,६०,२४,१९४
१९५१	७,८१०	२१,७७,५५१	१२,१२,३४,२११	५६,७८,०२,०५५
१९५२	७,९३२	२३,३६,३९४	१३,१६,१६,२९८	६०,२४,७२,७९३

तालिका—११ प्राथमिक कृषि अतिरिक्त अऋण सभाएं

वर्ष	कुल संख्या	सदस्य संख्या	भाग धन	चालू धन
१९४७	—	—	—	—
१९४८	१६,०६४	—	—	—
१९४९	१५,७९३	—	—	—
१९५०	१९,७३९	२५,४९,४९४	७,९७,०४,७४८	२६,७०,७५,७६१
१९५१	२०,५१८	२८,०३,२५६	९,४८,५५,२३०	३५,२१,६८,३९९
१९५२	२१,६४९	३०,१३,२०३	१०,६२,२१,०६५	४२,९४,४३,२१६

तालिका—१२ केन्द्रीय भूमि बंधक बैंक

वर्ष	संख्या	सदस्य	भाग धन	चालू धन
१९४७	—	—	—	—
१९४८	५	७,११४	२२,६७,३१७	५,२२,८३,५९९
१९४९	५	८,१२७	२३,७८,७९०	५,९७,३४,६०६
१९५०	५	८,८७१	२६,६७,७७६	६,८६,९३,७११
१९५१	५	९,८४८	३१,३३,५३२	७,७२,०९,२८४
१९५२	६	३४,५७९	४३,६८,००१	१०,१६,५८,२६०

तालिका—१३ प्राथमिक भूमि बंधक बैंक,

वर्ष	संख्या	सदस्य	भाग धन	चालू धन
१९४७	—	—	—	—
१९४८	२७२	१,५१,१०३	३६,७९,२०३	४,४०,९३,७०१
१९४९	२६३	१,३१,९११	६१,३९,९३१	५,१८,३९,५६१
१९५०	२८३	१,८६,३३०	४६,०५,९११	५,८६,०९,३१६
१९५१	२८६	२,१५,०६३	५२,५०,४८७	६,६५,७२,९०६
१९५२	२८९	२,१३,८१८	५७,८६,१६९	७,५९,४९,९०२